तत्वमाला

अर्थात्

जिनेन्द्रमत दर्पण—द्वितीय भाग

शीतलप्रसाद जैनी लखनऊ निवासी
द्वारा सम्पादित

भारत-जैन-महामंडल द्वारा प्रकाशित

तथा

प० सुदर्शनाचार्य्य, बी० ए०, के प्रबन्ध से
सुदर्शन प्रेस, प्रयाग
में मुद्रित।

सन् १९११ ई०

द्वितीय आवृत्ति १०००] [मूल्य ५ आना

आशा है हमारे भाई इस पुस्तक को अधिक पढ़ पढ़ कर लाभ उठावेंगे, तथा पाठशाला के विद्यार्थियों में इसका प्रचार करेंगे और स्त्रियों तथा कन्याओं को भी पढ़ने देंगे। और यदि मेरी अल्प बुद्धि के कारण मेरे समझने में कहीं त्रुटियां रह गई हों तो मुझको क्षमा करते हुए सूचित करेंगे जिसमें तीसरी आवृत्ति में रहे सहे दोष भी निकाल दिए जांय ॥

ता० २०-६-११

जाति हितैषी
शीतलप्रसाद ब्र०

विषय-सूची ।

मैं तो यही विश्वास करता हूं कि आप अपने मुक्त कंठ से यही कह उठेंगे "निःसन्देह इस श्लोक का वचन बहुत ठीक है" ॥

यदि यही उत्तर आपका होगा तो हम भी सहमत हैं। पर हमें शब्द "क्यों" के उत्तरों का प्रकाश करना भी आवश्यक है। क्या यह कान कुंडल पहनने के लिये नहीं? तब फिर कुंडलों का होना निरर्थक है। नहीं नहीं कुंडल पहनाना इस कर्ण की बाह्य शोभा को दिखलाना है। पर जब यह कर्ण कुंडल तो पहन लें पर हमारे हितकारी कार्य की ओर अपने विषय को न लगा कर अहित में प्रवर्त्तें तो क्या वह कर्ण उस सोने के घड़े के तुल्य नहीं है कि जो मल से पूरित हो अथवा उस कर्ण की प्रभा उस स्त्री के तुल्य नहीं है जो कि शृंगार रस में भीजी होने पर कुशील के कीचड़ से लिप्त हो। पर महाशयो! ऐसे कर्ण को दोषी ठहराने के समय कुछ हमें और भी वर्णन कर देना पड़ेगा कि हमारा कौन कार्य हितकारी और कौन अहितकारी है। पाठकगण! कृपया इन दो बातों का भी ध्यान करें—हमारी सम्मति इस विषय में यह है कि जगत मे जो कार्य्य हमें वास्तव मे सुख पहुंचाने वाला व सुख के मार्ग मे ले जाने वाला है, वही हितकारी और इससे विरुद्ध अहितकारी है ॥

अब यह भी निर्णय कीजिये कि सुख क्या है। जहां तक बुद्धिमानों ने विचार किया है सुख उस अवस्था को कहते हैं कि जिस समय आकुलता का अभाव हो क्योंकि जहां

है पर वास्तव में सुखी वही होगा जिस का सर्व इच्छाओं के रोगों की शांति हो जायगी। इसी लिये हमको वह यत्न करना योग्य है जिस में हमें विषयों की इच्छाएं बाधित न करें। बस यही सुख मार्ग पाने का सीधा उपाय है। पाठकों ने भले प्रकार जैन शास्त्रों से निर्णय किया होगा कि बड़े बड़े महान पुरुष जैसे तीर्थङ्कर चक्रवर्ती आदिक पूर्ण पुन्य योग से इच्छित विषय प्राप्त करने का यत्न रखने थे तथापि इच्छाओं के रोगों से उनको मुक्ति उस यत्न से नहीं हुई। उनको इन रोगों से छूटने के वास्ते परिग्रह का भार छोड़ बन में जा नग्न दिगम्बर हो तप करना पड़ा। अपने चित्त को अपने आप में बिठाना पड़ा। तब उनके पूर्ण यत्न से वे इच्छाओं के रोगों से मुक्त हुए और तब तीन लोक की वस्तुओं का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सर्व प्रकार से सुखी होते भए। बस वास्तव में हम प्राणियों को भी वही मार्ग धारण करना उचित है अर्थात् जितेन्द्रिय हो अपने आत्मद्रव्य को जानना उचित है। अपने आत्मद्रव्य रूपी फटिक मणि में से कर्म रुपी मैल को निकाल डालना उचित है और जब ऐसा हम करेंगे तब ही हमारे उस फटिक मणि मे तीन लोक की वस्तुओं के सर्वगुण पर्य्याय झलकेंगी और किसी चीज़ के विषय जानने की इच्छा न पैदा होगी।

पूर्ण यत्न सुखी होने का तो मुनिपद ग्रहण से है पर जब तक ऐसा न हो सके तब तक गृहस्थी मे यथाशक्ति यत्न करता रहे—बस अपने कानों को ऐसी ध्वनि सुनाना कि जो

भूमिका

पाठकों ! आपको विदित होगा कि तत्वमाला नाम का एक लेख जैनगजट से अङ्क ३, ता० १ दिसम्बर १६०४ से निकल कर गजट के अङ्क ३७, ता० ८ जुलाई १६०५ में समाप्त हुआ है। गजट के बहुत से पाठकों ने यह इच्छा प्रकट की कि यह लेख पुस्तकाकार छपवा दिया जाय तो तत्व भेद जानने वालों को बहुत लाभ प्राप्त होगा इसलिये इसकी १००० कापियां प्रथम आवृत्ति में सन् १६०५ में प्रकाशित हुई थीं और उन से पाठकों ने लाभ उठाया तथा दूसरी आवृत्ति मुद्रित होने के लिये भारत जैन महामण्डल को उद्यत किया।

इस पुस्तक म जैन धर्म के मूल सात तत्वों का वर्णन श्री तत्वार्थ सूत्र की अर्थबोध टीका के अनुसार इस रीति से दिखलाया गया है कि हमारे अल्पज्ञानी नव युवकों को समझ में भले प्रकार आ जायगा। जिनेन्द्रमतदर्पण प्रथम भाग जो प्रथम छपवाया गया था, उसमें भी एक स्थान पर यह प्रतिज्ञा की गई थी कि सात तत्वों को दूसरे भाग में प्रगट करेंगे। इसीलिये इसका नाम जिनेन्द्रमत दर्पण द्वितीय भाग रक्खा गया है। दूसरी आवृत्ति में यथा आवश्यक संशोधन कर दिए गए हैं।

अध्याय दूसरा

मन्तव्य

भाइयो ! श्रीमान् उमास्वामी आचार्य* ने मोक्ष मार्ग का स्वरूप अपने रचित श्री तत्त्वार्थ सूत्र जी में जैसा वर्णन किया है वही मार्ग अनादि काल से चला आया है। मोक्ष मार्ग वही मार्ग है जो कि जीव को दुःखों से बचाकर ऐसी दशा में धर दे कि जिस दशा में रह कर यह पूर्ण आनन्द अनंत काल तक भोगता रहे। पूर्ण आनन्द क्या वस्तु है और क्यों इस के प्राप्त करने की आवश्यकता है यह वर्णन पहले किया जा चुका है तथापि यहां पर भी उसकी किंचित परिभाषा दी जाती है ॥

पूर्ण आनन्द वह स्वाधीन निराकुल आनन्द है जोकि अपने जीव का निज स्वभाव है। और उसके पाने की आवश्यकता इस प्रयोजन से है कि यह जीव उस दशा में पूर्ण ज्ञानी अर्थात् सर्वज्ञ हो जाता है और यह नियम है कि सुख ज्ञान पूर्वक है। जिस व्यक्ति को एक वस्तु का हाल जब तक नहीं मालूम था वह दुखी था जब उसको वह हाल मालूम हो गया वह सुखी हो गया। इसी तरह पूर्ण ज्ञानी पूर्ण सुखी है। क्योंकि ऐसे जीव के लिये कोई पदार्थ शेष नहीं रहा कि जिसके जानने की आकुलता हो। आकुलता के अभाव से वह पूर्ण ज्ञानी सदा सुखी है—बस इसी पूर्ण ज्ञानी होने का जो उपाय है वही मोक्ष मार्ग है।

---

* यह आचार्य सम्वत १०९ में हुए हैं।

आशा है हमारे भाई इस पुस्तक को अधिक पढ़ पढ़ कर लाभ उठावेंगे, तथा पाठशाला के विद्यार्थियों में इसका प्रचार करेंगे और स्त्रियों तथा कन्याओं को भी पढ़ने देंगे। और यदि मेरी अल्प बुद्धि के कारण मेरे समझने में कहीं त्रुटियां रह गई हों तो मुझको क्षमा करते हुए सूचित करेंगे जिसमें तीसरी आवृत्ति में रहे सहे दोष भी निकाल दिए जांय ॥

ता० २०-१-११

जाति हितैषी
शीतलप्रसाद ब्र०

में रहता है यह अपने शरीर के द्वारा से किसी चीज को छूकर किसी का सवाद लेकर, किसी को सूंघ कर, किसी को देख कर और किसी को सुन कर उन का हाल मालूम करता है। जिस वक्त यह शरीर में नहीं रहता, शरीर अकेला किसी चीज़ का हाल जानने को असमर्थ हो जाता याने नहीं जान सक्ता है॥

अब यहां पर कोई कोई मतवाले यह शंका करते हैं कि जीव कोई जुदी चीज़ नहीं हैं और वे कहते हैं जैसा कि इस छंद में वर्णित है॥

चौपाई

भू जल अगिन पवन नभ मेल।
पांचो भए चेतना खेल॥
त्यों गुड़ आदिक तैं मद होय।
मद ज्यों चेतन थिर नहि कोय॥

याने ज़मीन, पानी, आग, हवा और आकाश के मिलने से चेतना याने जीव पैदा हो जाता है जैसे गुड़ वगैरह चीज़ों के मिलने से मदिरा याने शराब बन जाती है जिसका काम नशा है॥

इसके जवाब में जीव मानने वाले यह दोहा कहते हैं—

दोहा

पांचों जड़ ये आप हैं जड़ ते जड़ ही होय।
गुड़ आदिक तैं मद भयो, चेतन नाही सोय॥

जिनेन्द्रमत दर्पण

❁ दूसरा भाग ❁

तत्वमाला ॥

भाई साहबान्—क्या यह बात सत्य है ! कि

"श्रोत्र श्रुतेनैव न कुंडलेन, दानेन पाणिर्नतु कङ्कणेन । विभातिकाया खलु सज्जनानाम् परोपकारेण न चंदनेन" ॥

अर्थात् कानों की शोभा कुंडल पहनने से नहीं परन्तु शास्त्र सुनने से है, हाथ की शोभा कङ्कण से नहीं परन्तु दान देने से है, इसी तरह सज्जनों के शरीर की शोभा चंदन लगाने से नहीं परन्तु परोपकार से है ॥

इस प्रश्न का उत्तर कुछ शीघ्रता से देने की आवश्यकता नहीं । थोड़ी देर पश्चात बैठ चित्त की वृत्ति को सर्व आक्षेपों से रोक अपने अंतरंग में वादानुवाद करके निर्णय कीजिये और तब भले प्रकार साहस की कमर बांध निर्भय हो खुले स्थान में आकर बहुत बड़ी ध्वनि से इस प्रश्न का उत्तर कह दीजिये ॥

पाठक गण—है कि नहीं, क्योंकि बिना विचार कहना केवल कहना ही कहना है । यदि विचार पूर्वक कहना होगा तो क्या सच्चा श्रद्धा पूर्वक कहना न होगा । बस महाशयो

हो सकता) भी मूर्तिक होगा। यदि हम यह मानें कि मिट्टी, पानी, आग, हवा के मिलने से जीव होता है और एक एक का इनमें से एक एक ही छोटे से छोटा टुकड़ा आपस में मिल कर जीव हो जाता हो। तब भी इन पांच टुकड़ों से बनी चीज़ मूर्तिक ही होनी चाहिये, अमूर्तिक नहीं। मूर्तिक की तौल भी होती है किन्तु इस अमूर्तिक वस्तु जीव में कोई तौल नहीं—एक जीवधारी का शरीर उसके मरते समय तौला जाय और फिर जीव न रहै तब उसी शरीर को तौलो बशर्ते कि उसके शरीर से सम्बन्ध रखने वाला एक भी परमाणु (ज़र्रा) (Matter) पुद्गल का अलग न हो। तो दोनों की तौल बराबर होगी।

यह जीव अनादिकाल का है कभी इसका नाश नहीं होता ॥

चौपाई ॥

बालक सुख मैथुन को लेय।
दावे अचे दूध पिवेय ॥
जो अनादि को जीव न होय।
सीख बिना क्यों जाने सोय ॥
मर के भूत होत जे जीव।
पिछली बातैं कहै सदीव ॥
सिरचढ़ि बोलै निज वर आय।
तातै हस अमर ठहराय ॥

भावार्थ—छोटा लड़का जन्मतेही अपनी माता को पहचान कर दूध पीने लगता है। शरीर में दुख मालूम होते ही रो

में तो यही विश्वास करता हूं कि आप अपने मुक्त कंठ से यही कह उठेंगे "निःसन्देह इस श्लोक का वचन बहुत ठीक है" ॥

यदि यही उत्तर आपका होगा तो हम भी सहमत हैं। पर हमें शब्द "क्यों" के उत्तरों का प्रकाश करना भी आवश्यक है। क्या यह कान कुंडल पहनने के लिये नहीं? तब फिर कुंडलों का होना निरर्थक है। नहीं नहीं कुंडल पहनाना इस कर्ण की बाह्य शोभा को दिखलाना है। पर जब यह कर्ण कुंडल तो पहन लें पर हमारे हितकारी कार्य की ओर अपने विषय को न लगा कर अहित में प्रवर्त्तें तो क्या वह कर्ण उस सोने के घड़े के तुल्य नहीं है कि जो मल से पूरित हो अथवा उस कर्ण की प्रभा उस स्त्री के तुल्य नहीं है जो कि शृंगार रस में भीजी होने पर कुशील के कीचड़ से लिप्त हो। पर महाशयो! ऐसे कर्ण को दोषी ठहराने के समय कुछ हमें और भी वर्णन कर देना पड़ेगा कि हमारा कौन कार्य हितकारी और कौन अहितकारी है। पाठकगण! कृपया इन दो बातों का भी ध्यान करें—हमारी सम्मति इस विषय में यह है कि जगत मे जो कार्य्य हमें वास्तव मे सुख पहुंचाने वाला व सुख के मार्ग मे ले जाने वाला है, वही हितकारी और इससे विरुद्ध अहितकारी है॥

अब यह भी निर्णय कीजिये कि सुख क्या है। जहां तक बुद्धिमानों ने विचार किया है सुख उस अवस्था को कहते है कि जिस समय आकुलता का अभाव हो क्योंकि जहां

ऊरध चाल सुभाव विराजत तौ अधिकारनि को धरता है।
सो सब भेद बखान करूँ सरधान करो भ्रम को हरता है ॥२॥

सवैया ३१

इन्द्री पांच बल तीन श्वास आव दस प्राण मूल चार इन्द्री बल स्वास आव मानिये। पूरब जीवै था अब जीवै आगे जीव होगा एई प्राण सेती विवहार जीव जानिये॥ सुख सत्ता बोध और चेतन निहचै प्राण, शाश्वतां सुभाव तीनकाल में बखानिये। विवहार निहचै स्वरूप जान सरधान ऐसे जीव वस्तु लखै सो सुखी पिछानिये॥

भावार्थ—जीव के मुख्य करके ६ विशेषण है (१) सदा जीव है अर्थात् तीनों काल में जीता है (२) उपयोगमई याने ज्ञान दर्शन का धारी है (३) अमूरत है पुद्गल की ऐसी कोई मूरत (material figure) नही है (४) कर्त्ता है याने व्यौहार से कर्मों का कर्त्ता है निश्चय से अपने ही भावो का कर्त्ता है (५) देह प्रमाण याने जिस देह मे जाता है उसी देह के प्रमाण सिकुडता व फैल जाता है (६) भोक्ता है याने व्यवहार से अपने ही किये हुए कर्मों का फल आप भोगता है। निश्चय से अपने स्वभाव को भोगता है (७) संसारी है अर्थात संसार में घूमने वाला है (८) सिद्ध है अर्थात संसार से रहित शिवरूप है (९) ऊर्ध्व स्वभाव धारी है याने अग्नि की लौ के समान ऊंचा चलने का है स्वभाव जिस का। व्यवहार में जीव वह है जिसके कम से कम ४ प्राण और ज्यादा से ज्यादा १० प्राण होते है।

आकुलता, घबडाहट, चिन्ता, शोक, क्रोध, लोभ, माया, इत्यादि उपस्थित होंगे वहां सुख कहां से हो सक्ता है। इंद्रियों के विषयों से माना हुआ सुख कुछ आकुलता के अभाव मे जब तक उस विषय की स्थिरता है और अपना चित्त केवल उसी विषय में लौलीन है तब तक है। पश्चात् फिर अन्य विषय ग्रहण करने की आकुलता बाधित करती है। जैसे किसी को सेब खाने की इच्छा हुई अब जब तक सेब का स्वाद जबान को न मालूम होगा तब तक आकुलता रूप दुःख है। यदि पुन्य योग से हमारी इच्छा के अनुसार सेब आ भी गया (क्योंकि जगत के प्राणी बहुत प्रकार के विषयों के पाने की कामनाए किया करते हैं पर उनकी एक भी इच्छा फली भूत नहीं होती) और उसने भक्षण भी किया परन्तु उसके भक्षण करते २ ही दूसरी किसी वस्तु की इच्छा हुई कि तुरत दुःख पैदा हो गया। अब जबतक यह इच्छा पूर्ण न होय तब तक वह दुखी है। इस प्रकार इन्द्रियों के विषयों द्वारा सुख को माना ऐसा है कि जैसे कोई अनेक रोगों से पीड़ित होय और उसका एक रोग शांत हुआ हो इतने ही में वह रोगी उस के शांत होने से अपने को सुखी मान लवे। लेकिन यदि ठीक ठीक विचारियेगा तो यही कहना होगा कि जब तक वह रोगी सर्व रोगों से मुक्त न हो जाय कदापि सुखी नहीं है। इसी तरह ससारी प्राणियों के अनेक असंख्य इच्छाओं के रोग लगे हुए हैं। जब एक इच्छा रूपी रोग किसी शुभ कर्म वश से शांत होता है तो यह प्राणी अपने को सुखी मान लेकर

और वस्तु की मदद के तीन लोक की सब चीज़ों को जान लेता है। अवधि ज्ञान और मन पर्य्यय ज्ञान के होने पर इस जीव के जानने की शक्ति में थोड़ी मदद और चीज़ों की आवश्यकता होती है इसी लिये इन दो ज्ञानों को कुछ प्रत्यक्ष भी कहते हैं।

किन्तु मति ज्ञान और श्रुति ज्ञान यह दो ज्ञान बिना और चीज़ों की मदद के बिलकुल नहीं होते। यह दो ज्ञान एकेन्द्री जीव से लेकर मन सहित पंचेन्द्री जीव तक सब जीवों के कमती बढ़ती पाये जाते हैं॥

अवधि ज्ञान जन्मते ही देवनारकी और तीर्थंकरों के पाया जाता है लेकिन औरों को इसके पाने के लिये आत्मध्यान करना होता है। मन पर्य्यय ज्ञान और केवल ज्ञान यह दो ज्ञान बिलकुल आत्मध्यान करने ही से मनुष्य जन्मधारी जीव ही को होते हैं—एक जीव के एक वक्त में कमती से कमती एक और ज़्यादा से ज़्यादा ४ ज्ञान होते हैं—यदि एक ज्ञान होगा तो केवलज्ञान ही होगा क्योंकि जिस समय केवलज्ञान होता है उस समय पूर्ण ज्ञान हासिल हो जाता है फिर और ४ प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती है। दो होंगे तो मति और श्रुति होंगे तीन होंगे, तो मति श्रुति और अवधि या मन पर्य्यय। और चार होंगे तो मति, श्रुति, अवधि और मन पर्य्यय होंगे।

हमारे में मति और श्रुति यह दो ज्ञान ही मौजूद हैं और यह दोनों ज्ञान पांच इन्द्रिय और मन के आधीन हैं क्योंकि हमारे आत्मा का इतना ज्ञान मन्द है कि यह बिना इनकी

है पर वास्तव में सुखी वही होगा जिस की सर्व इच्छाओं के रोगों की शांति हो जायगी। इसी लिये हमको वह यत्न करना योग्य है जिस में हमें विषयों की इच्छाएं बाधित न करें। बस यही सुख मार्ग पाने का सीधा उपाय है। पाठकों ने भले प्रकार जैन शास्त्रों से निर्णय किया होगा कि बड़े बड़े महान पुरुष जैसे तीर्थङ्कर चक्रवर्ती आदिक पूर्ण पुन्य योग से इच्छित विषय प्राप्त करने का यत्न रखने थे तथापि इच्छाओं के रोगों से उनको मुक्ति उस यत्न से नहीं हुई। उनको इन रोगों से छूटने के वास्ते परिग्रह का भार छोड़ वन में जा नग्न दिगम्बर हो तप करना पड़ा। अपने चित्त को अपने आप में बिठाना पड़ा। तब उनके पूर्ण यत्न से वे इच्छाओं के रोगों से मुक्त हुए और तब तीन लोक की वस्तुओं का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सर्व प्रकार से सुखी होते भए। बस वास्तव में हम प्राणियों को भी वही मार्ग धारण करना उचित है अर्थात् जितेन्द्रिय हो अपने आत्मद्रव्य को जानना उचित है। अपने आत्मद्रव्य रूपी फटिक मणि में से कर्म रूपी मैल को निकाल डालना उचित है और जब ऐसा हम करेंगे तब ही हमारे उस फटिक मणि मे तीन लोक की वस्तुओं के सर्वगुण पर्य्याय झलकेंगी और किसी चीज़ के विषय जानने की इच्छा न पैदा होगी।

पूर्ण यत्न सुखी होने का तो मुनिपद ग्रहण से है पर जब तक ऐसा न हो सके तब तक गृहस्थी मे यथाशक्ति यत्न करता रहे—बस अपने कानों को ऐसी ध्वनि सुनाना कि जो

यह लोक सब जगह छः द्रव्यों से भरा हुआ है। वह छः द्रव्य ऊपर कहे हुए पांच तरह के अजीव और एक जीव द्रव्य हैं॥

इस पांच अजीवों में धर्म, अधर्म, आकाश और काल तो विलकुल अमूर्तिक हे। सिर्फ पुद्गल ही मूर्तिक है॥

इस जगत में जितनी वस्तुएं इन्द्री गोचर हो रही हैं सब पुद्गल ही हैं॥

हमारा बहुत बडा सम्बन्ध पुद्गल से रहता है इस कारण पहले पुद्गल नामा अजीव ही के भेदों का वर्णन प्रगट किया जाता है॥

पुद्गल छः प्रकार के होते हैं (१) सूक्ष्म सूक्ष्म (२) सूक्ष्म (३) सूक्ष्म स्थूल (४) स्थूल सूक्ष्म (५) स्थूल (६) स्थूल स्थूल॥ सूक्ष्मसूक्ष्म पुद्गल का एक परमाणु होता है याने इतना छोटा हिस्सा कि जिसका फिर भाग न हो सके॥

सूक्ष्म—कर्म वर्गणा के पुद्गल हैं जिन से बंधा हुआ यह आत्मा संसार चक्र में घूमा करता है और जिन के छूट जाने से यह जीव मुक्त कहलाता है॥

सूक्ष्म-स्थूल वह चीज है जोकि देखने में सूक्ष्म है याने चर्म नेत्रों से नहीं दिखलाई पडती परन्तु अपने कार्य में बहुत स्थूल है याने काम उसका बहुत बडा मालूम होता है जैसे शब्द (आवाज़) खुशबू जोकि देखने में नहीं आते परन्तु काम इनका साक्षात् प्रगट है-

स्थूल-सूक्ष्म वह पुद्गल है जो देखने में बहुत मालूम हो पर सूक्ष्म इतना कि आप उसे हाथ से पकड़ नहीं सकते जैसे चांदनी, धूप, छाया आदिक॥

चित्त को प्रमाद से छुड़ाकर उत्तम में, जुआ आदि सात व्यसनों से छुड़ाकर धर्म अर्थ काम मोक्षरूप चारों पुरुषार्थ के साधन में, क्रोध मान माया लोभ की तीव्रता से बचाकर विवेक के मार्ग में, स्वार्थीपने की आदत से बचाकर कुटुम्ब रक्षण, जाति या धर्म रक्षण, देश हितरक्षण व जगत सुखदायक कार्यों की ओर फेर देवे यही हमारा हित है। सो इसी लिये न्यायकार कहते हैं कि हे भाइयों कर्णों की शोभा कुंडल पहने से नहीं किन्तु हितकारी वार्ता के सुनने से है--इसी तरह वह हाथ जोकि निर्ममत्व हो सर्व त्याग कर दे अथवा जो परोपकार में अपने हाथ से धन को दान करे वही हाथ शोभनीक है। इसी तरह सज्जन और साधु पुरुषों के शरीर निश्चय से चन्दन लगाने से शोभनीक नहीं होते किन्तु यदि वह अपने शरीर से परोपकार करें तभी शोभनीक हैं॥

भाइयो! जो आप मि० गोखले, दादा भाई नौरोजी, मि० ताता, मि० सुरेन्द्रनाथ बनर्जी मि० मदनमोहन मालवीय, मि० सय्यद अहमद इत्यादि परोपकारियों की प्रशंसा करते हैं यह उनके परोपकारता में अपने तन को लगाने ही के कारण करते हैं। कुछ सुन्दर पगड़ी और कपड़े पहनने से नहीं। इसी तरह हमारी जैन जाति के भद्र पुरुषों (जेन्टिलमैनों) की शोभा उसी समय है जब वे अपने आप को जाति व धर्म की उन्नति में लगा देवें। कुछ सुंदर कपड़े पहनने पगड़ी बांधने से नहीं, कुछ पतलून कोट पहनने से नहीं कुछ वृथा प्रलाप करने से नहीं॥

स्वभावधारी कर्मरूपी मल प्रयत्न करने से दूर होता है और यह आत्मा शुद्ध हो सकता है ॥

यह कर्म्म वर्गणा के परमाणु जोकि संसारी जीवों को घसे रहते हैं इतने सूक्ष्म हैं कि अनंतानंत इस जीव के साथ रहते हुए भी इन चर्मनेत्रों से दिखलाई नहीं पड़ते इसके लिये हमें आश्चर्य न करना चाहिये क्योंकि वायुकाय के पुद्गल इतने भारी होने पर भी कि बड़े बड़े पहाड़ के शिखरों को अपने धक्के से गिरा दें दिखलाई नहीं पड़ते इसी प्रकार बहुत सी ऐसी चीज़ें तलाश करने से मिलेंगी जोकि नहीं दिखलाई पड़तीं। यह कर्म वर्गणा कुछ एकही रूप से अनादि काल से नहीं आ रही हैं, हर एक समय (जोकि काल का सब से छोटा हिस्सा है) में पुराने कर्म के पुद्गल झड़ते जाते हैं और नये मिलते जाते हैं।

पुराने कर्म आत्मा के साथ रहने से जिस समय वे रस देने को सन्मुख होते हैं अज्ञानी आत्मा को उस तरह के कर्म के फल के भोगने के लिये उद्यत होना होता है ज्ञानवान आत्मा कर्म का फल कमती बढ़ती भी भोग सकता है यदि वह भोगने वाला आत्मा समभाव से याने यह समझ कर कि यह मेरे ही किये हुए कर्म का फल है उस दशा को सह ले और अपने भाव बिलकुल कलुषित व हर्षित न करे तो उस कर्म फल भोगने की अवस्था में उसके नए कर्म्मों का बन्धन नहीं होगा किन्तु यदि कुछ भी हर्ष विषाद होगा तो नये कर्म्मों का अवश्य बंधन होगा जैसे किसी जीव के कर्म उदय के वंश से कोई रोग उत्पन्न होने के कारण बन गए। उस समय यदि

अध्याय दूसरा

[illegible]

भाइयो ! श्रीमान् उमास्वामी आचार्य* ने मोक्ष मार्ग का स्वरूप अपने रचित श्री तत्त्वार्थ सूत्र जी में जैसा वर्णन किया है वही मार्ग अनादि काल से चला आया है। मोक्ष मार्ग वही मार्ग है जो कि जीव को दुःखों से बचाकर ऐसी दशा में धर देवे कि जिस दशा में रह कर वह पूर्ण आनन्द अनंत काल तक भोगता रहे। पूर्ण आनन्द क्या वस्तु है और क्यों इस के प्राप्त करने की आवश्यकता है यह वर्णन पहले किया जा चुका है तथापि यहां पर भी उसकी किंचित परिभाषा दी जाती है॥

पूर्ण आनन्द वह स्वाधीन निराकुल आनन्द है जोकि अपने जीव का निज स्वभाव है। और उसके पाने की आवश्यकता इस प्रयोजन से है कि यह जीव उस दशा में पूर्ण ज्ञानी अर्थात् सर्वज्ञ हो जाता है और यह नियम है कि सुख ज्ञान पूर्वक है। जिस व्यक्ति को एक वस्तु का हाल जब तक नहीं मालूम था वह दुखी था जब उसको वह हाल मालूम हो गया वह सुखी हो गया। इसी तरह पूर्ण ज्ञानी पूर्ण सुखी है। क्योंकि ऐसे जीव के लिये कोई पदार्थ शेष नहीं रहा कि जिसके जानने की आकुलता हो। आकुलता के अभाव से वह पूर्ण ज्ञानी सदा सुखी है—बस इसी पूर्ण ज्ञानी होने का जो उपाय है वही मोक्ष मार्ग है।

---

* यह आचार्य सम्वत् १०९ में हुए हैं।

आत्म उन्नति की ओर दत्तचित्त रहते हैं। जैनमत कहता है कि जहां आलस्य हैं वहां पाप है। श्री उमा स्वामी कृत तत्वार्थ सूत्र में हिंसा का भेद इस प्रकार लिखा हैं कि प्रमाद के योग से जो प्राणों का नाश करना हैं,वह हिंसा है। आलसी पुरुष न खाने में न पीने में न उठाने में न धरने में न वात करने में किसी ही काम में उचित यत्न न रखने के कारण जीव हिंसा के पाप के भागी होते हैं। जो भाई जिनेन्द्र दर्शन करने का उद्यम किंचित भी न करने पर और पूछने पर यह जवाब दे देते हैं कि भाई क्या करें हमारे भाग्य ही में नहीं जो थोड़ी सी भी फुरसत मंदिर जाने को मिले वे लोग और भी ज्यादा पाप के भागी होते हैं।

इस विषय का विशेष वर्णन जानना हो तो श्री पुरुपार्थ सिद्ध्युपाय ग्रन्थ की स्वाध्याय करके जान सकते हैं।

यहां पर यदि कोई प्रश्न करे कि कर्म वर्गणा के पुद्गल मूर्तिक हैं और आत्मा अमूर्तिक है किस प्रकार अमूर्तिक को मूर्तिक घेर सकता है इसका समाधान इस प्रकार है कि यह संसारी जीव अपनी वर्तमान दशा में अमूर्तिक नही किन्तु मूर्तिक है क्योंकि अनादि से कर्मों करके घिरा हुआ है उसी कर्म के साथ मे और कर्म आकर मिल जाते हैं, शुद्ध जीव कर्मों से सम्मिलित नही हो सकता, जिस समय जीव के भाव अपने स्वभाव से भिन्न होते है उस समय कर्म वर्गणा के परमाणुओ को जोकि तीनों लोक में भरे हैं यह संसारी जीव आकर्षित कर लेता है। इस लिये कर्म्म के फन्दों से छूटनाही इस जीव का परमहित है यह कर्म्म आठ ८ प्रकार,के होते.हैं ॥

यह मार्ग तीन भेद रूप मे है अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्य ग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र अर्थात् अच्छी तरह विश्वास करना, अच्छी तरह जानना और अच्छी तरह आचरण करना—किनको? तत्वों को। तत्व क्या वस्तु है? इस शब्द का अर्थ सत्यता है और यहां पर भी तत्व उसी को कहते हैं जो सत्य सत्य वस्तु मोक्ष मार्ग मे प्रयोजन भूत है अर्थात् वह वस्तु जिनके कि जाने बिना मोक्ष मार्ग नहीं ग्रहण किया जा सकता॥

तत्व सात-७ है —

जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष॥

अध्याय तीसरा

जीव तत्व

महाशयो! **जीव** से निश्चय करके मतलब उस चीज से है जो कि जीती थी अर्थात् चैतन्य रूप में थी, जीती है याने इस वर्तमान समय में भी जी रही है और जीवेगी याने आगामी जीती रहेगी। प्रयोजन यह है कि ज्ञान जो एक गुण है वह जीव ही के पास है और कहीं नहीं। जिस चीज में जीव नहीं होता उसको जड कहते हैं जड में समझने व पहचानने की ताकत नहीं। यह ताकत एक **जीव** ही के पास है॥

यह बात निर्विवाद सिद्ध है, हर एक मत व हर एक बुद्धिमान अच्छी तरह समझता है कि जीव जिसको रूह कहते हैं उसका काम "जानने" का है। जिस वक्त यह शरीर

(२) श्रुति ज्ञानावरणी—जो श्रुति ज्ञान को न होने दे। श्रुति ज्ञान मति ज्ञान पूर्वक होना है अर्थात् पदार्थों का विशेष हाल व भेद मालूम करना यह श्रुति ज्ञान का विषय है ११ अङ्ग १४ पूर्व का ज्ञान सब श्रुति ज्ञान है॥

(३) अवधि ज्ञानावरणी वह ज्ञान है जो अवधि ज्ञान को न होने दे। अवधि ज्ञान वह ज्ञान है जिसके द्वारा तपस्वी मुनि अपने व और जीवों के पूर्व जन्म के चरित्रों को व आगामी चरित्रों को विचार करने से मालुम करते हैं यह ज्ञान रूपी पदार्थों ही को जान सकता है। यह ज्ञान देव और नारकियों के भी होता है जिससे वे अपने पूर्व भवका वृत्तांत विचार करने से जान लेते हैं॥

(४) मन पर्यय ज्ञानावरणी—मन पर्यय ज्ञान को नहीं होने देती—मन पर्यय ज्ञान वह ज्ञान है जो कि दूसरों की मन सम्बन्धी सूक्ष्म बातोंओं को व सूक्ष्म पुद्गल द्रव्यों के चरित्र को जान लेता है॥

(५) केवल ज्ञानावरणी—केवल ज्ञान को नहीं होने देता केवल ज्ञान वह ज्ञान है जो कि सर्व पदार्थों की कुल पर्य्यायों को एक ही समय में मालुम करता है॥

इस प्रकार ज्ञानावरणी कर्म्म के पांच भेद हैं। इस कर्म के आश्रव होकर बंधने (अर्थात् कर्मों का आकर आत्मा से सम्बन्ध करने) में नीचे लिखे कारण होते हैं। जब मन वचन और काय चलायमान होते हैं उसी समय कर्मों का आगमन होता है जैसे चुम्बक पत्थर लोहे को घसीट लेता है इसी

में रहता है यह अपने शरीर के द्वारा से किसी चीज को छूकर किसी का सवाद लेकर, किसी को सूंघ कर, किसी को देख कर और किसी को सुन कर उन का हाल मालूम करता है। जिस वक्त यह शरीर में नहीं रहता, शरीर अकेला किसी चीज़ का हाल जानने को असमर्थ हो जाता याने नहीं जान सक्ता है॥

अब यहां पर कोई कोई मतवाले यह शंका करते हैं कि जीव कोई जुदी चीज़ नहीं हैं और वे कहते हैं जैसा कि इस छंद में वर्णित है॥

चौपाई

भू जल अग्नि पवन नभ मेल।
पांचो भए चेतना खेल॥
ज्यों गुड़ आदिक तें मद होय।
मद ज्यों चेतन थिर नहि कोय॥

याने ज़मीन, पानी, आग, हवा और आकाश के मिलने से चेतना याने जीव पैदा हो जाता है जैसे गुड़ वगैरह चीज़ों के मिलने से मदिरा याने शराब बन जाती है जिसका काम नशा है॥

इसके जवाब में जीव मानने वाले यह दोहा कहते हैं—

दोहा

पांचों जड़ ये आप हैं जड़ ते जड़ ही होय।
गुड़ आदिक तें मद भयो, चेतन नाही सोय॥

अपने व दूसरे के ज्ञानाभ्यास में रोकने वाली हैं वे सब ज्ञाना-
वरणी कर्म के आश्रव के कारण हैं ॥

हे हमारे प्यारे जैनी भाइयो! देखो आपका प्राचीन शास्त्र क्या कहता है—क्या आप लोगों को ज्ञानाभ्यास के कारणों को न जारी करने के कारण तथा विद्योन्नति में, आलस्य करने के कारण ज्ञानावरणी कर्म का आश्रव न होगा? क्या वह विद्वान पंडित जोकि आप ज्ञान से परिपूर्ण होकर और अपने ज्ञानरूपी ज्योति से हजारों के अज्ञान रूपी अंधेरे को मेटने की योग्यता रखने पर भी आलस्य करते हैं तथा दूसरों को वस्तु का स्वरूप भले प्रकार यह समझ कर नहीं सिखलाते हैं कि यह जान कर हमारी बराबरी करेंगे व हम से ज्ञान में उच्च हो कर हमारे मान में विघ्न करेंगे ज्ञानावरणी कर्म के आश्रव के भागी नहीं हैं? क्या वह हमारे सुख सेवी (पिन्शनयाफ़्ता) भाई जिनको सरकार पेन्शन इसी गरज से देती है कि वे अपने अन्त के दिन सुख शान्तता पूर्वक विताते हुये अपने अनुभव से हासिल किये हुये ज्ञान को दूसरों को प्रदान करें यदि ऐसा न करके अपने ज्ञानको छिपा कर रक्खें तो ज्ञाना-वरणी कर्म के आश्रव के भागी नहीं है?

हे हमारे जैनी भाइयो! आप अपने प्राचीन शास्त्रों को पढ़ कर उस पर चलने की कोशिश कीजिये। आपके शास्त्र जब पुकार पुकार कर कहते हैं कि "ज्ञान बिना करनी दुखदाई, अज्ञानी कोटि वर्ष तप तपे तो जितने कर्मों का क्षय हो उतने कर्मों को ज्ञानी एक क्षण भर तप करके नाश कर सकते हैं" तो क्यों आप ज्ञान शून्य अवस्था अपनी करते जाते हैं। आपने अपने

भू जल पावक पौन नभ, जहाँ रसोई जान।
यों नहिं चेतन ऊपजे, यह मिथ्या सरधान॥

याने जमीन वगैरह जिन पाचों के मिलने से कहते हो कि जीव पैदा होता है सो ये पाचों ही जड है जड चीज से जड पैदा होगी चेतन नहीं गुड वगैरह के मिलने से मदिरा रूपी एक जड चीज की पैदाइश हुई। उस मदिरा में अपने आप नशा कुछ नहीं है। जब वह पी जाती है तो पीने वाले को नशा मालूम भी होता है और नहीं भी मालूम होता है सो इस तरह से तो जगत में यह कायदा ही है कि कई जड चीजों के मिलने से एक दूसरे प्रकार की जड चीज पैदा हो जाती है जिसका असर कुछ न कुछ होता ही है जैसे पानी, माटा और खांड अग्नि के जरिये से मिल कर हलवा हो जाता है जो कि अपना एक खास असर रखता है। और देखिये रसोई में मिट्टी पानी आग, हवा और आकाश पाचों चीजें होती है पर उनमें सिवाय जड चीजों के कोई चेतन चीज पैदा नहीं हो सकती है—

यह बात तो साइंस (विज्ञान) के ज़रिये से भी प्रमाणित है कि जिन चीजों में पुद्गल (Matter) है उनके मिलने या अलग करने से पुद्गल (Matter) ही हो जायगा। पुद्गल में तरह तरह की ताकतें मौजूद है। एलेक्ट्रिसिटी (बिजुली) आदिक सब पुद्गल ही की पर्याय है। इनमें कुछ भी चेतना नहीं। जान का कोई सबूत नहीं होता। पुद्गल की मूरत है। मूर्तिक से अमूर्तिक वस्तु नहीं बन सकती है। पुद्गल का छोटा से छोटा टुकड़ा (जिसका और टुकड़ा नहीं

के लोग मुश्किल से १ ग्लास लैम्प की चिमनी बना सकते थे। जब कि ३ वर्ष बाद सन १९०२ में देखा गया तो वे ६००० टन वाले जहाज़ अपने डौक यार्डों में तय्यार कर रहे हैं। बस भाइयो! प्रमाद को छोड़ कर अपना सर्वस्व ज्ञान की उन्नति में खर्च कीजिए, तभी आप ज्ञानावरणी कर्म के संयोग से दूर रहेंगे। अन्यथा यह कर्म बँध कर आपकी आत्मा को निगोद आदि एकेन्द्री पर्याय में ले जाकर अज्ञानी की भांति ही असमर्थ कर देंगे॥

अध्याय छठा।

२—दर्शनावरणी कर्म

यह वह कर्म है कि जिसके सम्बन्ध से आत्मा की दर्शन शक्ति प्रकट नहीं होती तथा कम प्रकट होती है। यह नव प्रकार का होता है—

(१) चक्षु दर्शनावरणी—वह कर्म है जिसके उदय से यह प्राणी अधा होता व कम दृष्टिवाला होता है।

(२) अचक्षु दर्शनावरणी—वह है जिसके द्वारा आंख को छोड़कर और चार इंद्री जैसे नाक कान मुंह स्पर्श इनके द्वारा मालूम करना न हो।

(३) अवधि दर्शनावरणी—अवधि दर्शन को न होने दे। अवधि दर्शन वह दृष्टि है कि जिसके द्वारा यह जीव अपने द्रव्य क्षेत्र काल भाव की मर्यादा लिये रूपी पदार्थों को देखे। जैसे कुछ भव पहिले की बाते अपनी तथा औरो की देखकर कहना।

हो सकता) भी मूर्तिक होगा। यदि हम यह मानें कि मिट्टी, पानी, आग, हवा के मिलने से जीव होता है और एक एक का इनमें से एक एक ही छोटे से छोटा टुकड़ा आपस में मिल कर जीव हो जाता हो। तब भी इन पांच टुकड़ों से वनी चीज़ मूर्तिक ही होनी चाहिये, अमूर्तिक नहीं। मूर्तिक की तौल भी होती है किन्तु इस अमूर्तिक वस्तु जीव में कोई तौल नहीं—एक जीवधारी का शरीर उसके मरते समय तौला जाय और फिर जीव न रहे तब उसी शरीर को तौलो वशर्ते कि उसके शरीर से सम्बन्ध रखने वाला एक भी परमाणु (ज़र्रा) (Matter) पुद्गल का अलग न हो। तो दोनों की तौल वरावर होगी।

यह जीव अनादिकाल का है कभी इसका नाश नहीं होता॥

चौपाई॥

बालक सुख मैथुन को लेय।
दाये अचे दूध पिवेय॥
जो अनादि को जीव न होय।
सीख विना क्यों जाने सोय॥
मर के भूत होत जे जीव।
पिछली वातैं कहैं सदीव॥
सिरचढ़ि वोले निज घर आय।
ताते हंस अमर ठहराय॥

भावार्थ—छोटा लड़का जन्मतेही अपनी माता को पहचान कर दूध पीने लगता है। शरीर में दुख मालूम होते ही रो

को दूपण लगावना, कुतीर्थ की प्रशंसा करनी।' प्राणीन का घात करना तथा यतीश्वरों को देख ग्लानि करनी इत्यादि दर्शनावरणी कर्म के आश्रव के कारण है। इन कारणों को बचाने के लिये हमे अपने मन वचन काय पर काबू रखना चाहिये क्योंकि जिस समय इनमे से कोई चलता है कार्माण पुद्गल उसी समय उसके भाव (Thought) के प्रेरे उसके पास आते हैं और पुराने कर्मरूपी रज पर आकर जम जाते हैं।

प्यारे भाइयो ! ऐसा जानकर कि आलस्य और प्रमाद हमारे दर्शनावरणी कर्म के आश्रव के कारण हैं, हमें इसे दूर कर अपने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थों की परिपूर्णता में कटिबद्ध होना चाहिये। यदि हमारे वर्तमान जैन जाति के शास्त्र के मर्मी इस दर्शनावरणी कर्म के आश्रव के कारणो को छोड़ कर निरालसी हो पदार्थों का भेद मालूम करें और पुरुपार्थ की ओर ध्यान करें तो थोड़े ही दिनों में हमारी इस जैन जाति का सुधार हो जाय। खेद इस बात का है कि हमारे भाई अपने महान् आचार्यों के सदुपदेशों पर गौर ही नहीं करते ॥

अध्याय सातवां।

३—वेदनी कर्म

यह वह कर्म है जिसके उदय होने से प्राणियों को ऐसी चीज़ों का मिलाप होता है जिनके सबब से संसार मे मोह करनेवाला प्राणी सुख व दुख मालूम करता है, परन्तु

देता है, दूसरे जो जीव मर कर भूत आदिक नीच देव होते हैं वे कभी किसी के सिर चढ़ के पिछली बातें कहते हैं इत्यादि दृष्टान्त इस बात के प्रमाण हैं कि, जीव अनादि, अनन्त अविनाशी, पुद्गल से भिन्न कोई अमूर्तिक वस्तु है। मूर्तिक पुद्गल से इसका निश्चय से सम्बन्ध नहीं है—इस जीवका लक्षण 'जानना' 'देखना' है। लेकिन संसारी जीवों के ज्ञान दर्शन स्वभाव का प्रगटपना बहुत कम है इस से संसारी जीवों का जानपना इन पाँच इन्द्रिय तथा मनके द्वारा होता है। जैसे की दृष्टि ठीक न हो तो उसको देखने के लिये चश्मा लगाने की आवश्यकता होती है उसी प्रकार हमारे जानपने का स्वभाव जब तक निर्मल नहीं तब तक जानपने के लिये सहायता की आवश्यकता होती है—यहां पर यह शंका होगी कि जब **जीव** वस्तु का स्वभाव जानने का है तब और सहायताओं की क्या आवश्यकता है—इसका समाधान इस प्रकार है कि संसारी जीवों के स्वभाव अनादि काल से किसी प्रकार के मल से पूरित है जो कि इनको अपने स्वाभाविक कार्य के होने में बाधा करते हैं। वे मल क्या हैं इसका वर्णन **अजीव** और **आश्रव** तत्व में किया जायगा।

यहां पर केवल जीव तत्वही वर्णन है।

इसी जीव तत्व के विषय में एक कवित्त यह पवित्त है।

सवैया

जीव सदा उपयोग मई, निरमूरति मानति का करता है।
देह प्रमान कहो भुगता भव नाम वसै शिव का भरता है॥

की कोई हदही नहीं: पानी वरसा, कुम्हला कर मर गए; ज्यादा धूप पड़ी, धूप की तेजी में मर गए; ओले पत्थर गिरे, झुंड के झुंड स्वाहा हो गये; आदमियों व जानवरों के पैरों के तले कुचल गए, थोड़ी देर तक तड़फड़ा तड़फड़ा कर मरे। ऐसे अनेक दुखदायक चीज़ों का मिलाप होता है। हमारे नेचर के तमाशा देखने वालो ने (Naturalist) इस वात को अच्छी तरह गौर किया होगा॥

इसी तरह मनुष्य गति में दरिद्री, रोगी, धनहीन होना, खोटी स्त्री, खोटे भाई, खोटे पुत्र का संयोग होना इष्ट वियोग (जिससे हम प्रीति करते हैं उस चेतन व अचेतन चीज़ का यकायक बिछुड जाना), अनिष्ट संयोग (जिस चेतन व अचेतन चीज़ का मिलाप हम नहीं चाहते हैं उसी ही चीज़ का संयोग होना) के दुख भुगतना इत्यादि दुखदायक चीजों का मिलाप होने से दुख होता है। देवगति में नीच जाति के देव होकर वड़े देवों की चाकरी करना, उनके लिये सवारी का काम देना, देवांगना (जिनकी उमर थोडी होती है) वियोग के दुख भुगतना इत्यादि दुख को प्राप्ति होती है।

वेदनी कर्म का आत्मा के प्रदेशो के पास आगमन कैसे भावों से व किस ओर अपना मन वचन काय रखने से होता है?

इस प्रशन का उत्तर इस भांति जानना—

असाता वेदनी कर्म के आश्रव की कारणभूत इतनी बातें है—(१) दुख, (२) शोक, (३) ताप, (४) आक्रंदन, (५) वध, (६) परिवेदन॥

ऊरध चाल सुभाव विराजत नौ अधिकारनि को धरना है।
सो सब भेद बखान करूँ शरधान करो भ्रम को हरना है ॥१॥

सवैया ३१

इन्द्री पांच बल तीन श्वास आव दस प्राण मूल चार इन्द्री बल स्वास आव मानिये। पूरव जीवे था अब जीवे आगे जीव होगा एई प्राण सेतो विवहार जीव जानिये ॥ सुख सत्ता बोध और चेतन निहचे प्राण, शाश्वतो सुभाव तीनकाल में बखानिये। विवहार निहचे स्वरूप जान सरधान ऐसे जीव वस्तु लखै सो सुखी पिछानिये ॥

भावार्थ—जीव के मुख्य करके ६ विशेषण है (१) सदा जीव है अर्थात् तीनों काल में जीता है (२) उपयोगमई याने ज्ञान दर्शन का धारी है (३) अमूरत है पुदगल की ऐसी कोई मूरत (material figure) नहीं है (४) कर्त्ता है याने व्यौहार से कर्मों का कर्त्ता है निश्चय से अपने ही भावो का कर्त्ता है (५) देह प्रमाण याने जिस देह मे जाता है उसी देह के प्रमाण सिकुडता व फैल जाता है (६) भोक्ता है याने व्यवहार से अपने ही किये हुए कर्मो का फल आप भोगता है। निश्चय से अपने स्वभाव को भोगता है (७) संसारी है अर्थात संसार में घूमने वाला है (८) सिद्ध है अर्थात संसार से रहित शिवरूप है (९) ऊर्ध्व स्वभाव धारी है याने अग्नि की लौ के समान ऊंचा चलने का है स्वभाव जिस का। व्यवहार में जीव वह है जिसके कम से कम ४ प्राण और ज्यादा से ज्यादा १० प्राण होते है।

य छः बातें आप करे व दूसरे को करे व किसी की ऐसी दशा देखकर खुश होय व इन्हीं को मन बचन और काय से करे यह सब भाव व क्रियाएं असाता वेदनी कर्म के आश्रव के कारण होती हैं। इसके सिवाय दूसरे की बद-नामी करना, चुगली खाना, कठोर परिणाम होना, दूसरे के कषाय भाव से अंग उपंग छेद डालना, डर दिखलाना, कषाय भाव से अपनी तारीफ़ करना, दूसरे की बुराई करना, दूसरों के परिणाम दुखा देना आरंभ व परिग्रह में बड़ा ममत्व रखना, विश्वासघात (फ़रेब) करना, स्वभाव टेढ़ा रखना जीवों को बेमतलब दंड देना, विष पीना, या दूसरे को ज़हर पिलाना इत्यादिक जो जो पाप से मिले भाव हैं वह असाता वेदनी के आश्रव के कारण हैं। जैसे जैसे भाव में विकार होते हैं वैसे ही कार्माण जाति के पुद्गल आकर आत्मा के पुराने कर्मों के साथ में मिल जाते हैं और कालान्तर में फल देते हैं। इसी प्रकार साता वेदनीय के आश्रव के कारण यह हैं—

(१) भूत और वृती पर अनुकम्पा—याने भूत कहिये सामान्य प्राणी [Common human beings] और वृती कहिये वृत के धारी श्रावकादि पर पीड़ा देख कर ऐसे परिणाम होना मानों यह दुख हमही को हो रहे हैं और अपनी शक्ति भर देख दूर करने का यत्न करना।

[२] दान—दूसरे जीवों के भले के लिये अपना धन आदिक देना सो दान है। सो यह दान ४ प्रकार का है, औषध दान—दवाई का दान, आहार दान—भोजन का दान, अभय दान—जिसका कोई रक्षक न होय उसको रक्षा का दान, विद्या दान—याने इल्म हुनर का दान।

एक इन्द्री वाले जीवों के ४ प्राण याने स्पर्श इन्द्री शरीर का बल, आयु और श्वासोच्छ्वास होते हैं ॥

दो इन्द्री वाले जीवों के ६ प्राण याने पहले कहे हुओं से रसना इन्द्री और वचन बल ज्यादा होता है ॥

तीन इन्द्री वाले जीवों के ७ प्राण याने एक घ्राण (नाक) इन्द्री ज्यादा होती है।

चार इन्द्री वाले जीवों के ८ प्राण याने एक चक्षु (आंख) इन्द्री ज्यादा होती है।

पांच इन्द्री वाले जीव दो तरह के होते हैं एक मन वाले दूसरे मन बिना—

मन रहित पञ्चेन्द्री जीवों के ९ प्राण याने एक कर्ण इन्द्री ज्यादा होती है। मन सहित पञ्चेन्द्री जीवों के १० प्राण याने एक मन बल ज्यादा होता है।

और निश्चय कर जीव वह है जिसके सदा ज्ञान दर्शन सुख पाया जाय-

यहां पर व्यवहार और निश्चय दो शब्द कहे हैं इनका मतलब यह है कि निश्चय उसे कहते हैं जो कि वस्तु के असली हाल को कहे। व्यवहार उसे कहते हैं जो कि असली हाल को न कहे कर, किसी और चीजों के सम्बन्ध से जो तरह २ का माननें में आवे उसको कहे ॥

जीव का जो ज्ञान स्वभाव है उस ज्ञान स्वभाव के पांच भेद हैं याने मतिज्ञान श्रुतिज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्यय ज्ञान, और केवल ज्ञान। इन में से केवल ज्ञान जिस समय जीव के स्वभाव में होता है उस समय वह जीव स्वयं बिना किसी

है जिनमें कि मोही मन लीन होकर अपने आत्मस्वरुप को नहीं पहचानता।

परन्तु निज आत्मस्वरूप का पहिचानना दूर रहे, हम कभी इस बात का विचार तक नहीं करते हैं कि साता वेदनी व असाता वेदनी का आश्रव किन किन बातों से होता है। इसी हमारे विचार के न होने ही के कारण हम बाल्य विवाह करते शंका नहीं करते, हम वृद्ध विवाह करते डरते नहीं, हम बालकों को विद्वान करने की परवाह नहीं करते, हम अपनी जाति के भाइयों को दिन पर दिन अवनत दशा में प्राप्त होते हुए भी उन फिजूल खर्ची आदिक कारणों को नहीं रोकते। क्या कहें, यदि कोई विद्वान मंडली इन जैन धर्म के सम्यक उपदेशों को चित में धारण करे तो उस मंडली को कैसे सुख और शांतता की प्राप्ति हो सो कुछ शुमार में नहीं आ सकता।

अध्याय आठवां।

मोहनी कर्म।

यह वह कर्म है जिसके कारण यह जीव अपने से जुदी चीजों में ऐसा लुभा जाता है कि अपने आपको भूल जाता है। जैसे मदिरा (शराब] का नशा चढ़ता है, वैसेही मोह का नशा होता हैं। इस कर्म के खास खास भेद दो हैं—(१) दर्शन मोहनी, (२) चारित्र मोहनी।

और वस्तु की मदद के तीन लोक की सब चीज़ों को जान लेता है। अवधि ज्ञान और मन पर्य्यय ज्ञान के होने पर इस जीव के जानने की शक्ति में थोड़ी मदद और चीज़ों की आवश्यकता होती है इसी लिये इन दो ज्ञानों को कुछ प्रत्यक्ष भी कहते हैं।

किन्तु मति ज्ञान और श्रुति ज्ञान यह दो ज्ञान बिना और चीज़ों की मदद के बिलकुल नहीं होते। यह दो ज्ञान एकेन्द्री जीव से लेकर मन सहित पंचेन्द्री जीव तक सब जीवों के कमती बढ़ती पाये जाते हैं॥

अवधि ज्ञान जन्मते ही देवनारकी और तीर्थंकरों के पाया जाता है लेकिन औरों को इसके पाने के लिये आत्म-ध्यान करना होता है। मन पर्य्यय ज्ञान और केवल ज्ञान यह दो ज्ञान बिलकुल आत्मध्यान करने ही से मनुष्य जन्मधारी जीव ही को होते हैं—एक जीव के एक वक्त में कमती से कमती एक और ज्यादा से ज्यादा ४ ज्ञान होते हैं—यदि एक ज्ञान होगा तो केवलज्ञान ही होगा। क्योंकि जिस समय केवलज्ञान होता है उस समय पूर्ण ज्ञान हासिल हो जाता है फिर और ४ प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती है। दो होंगे तो मति और श्रुति होंगे तीन होंगे, तो मति श्रुति और अवधि या मन पर्य्यय। और चार होंगे तो मति, श्रुति, अवधि और मन पर्य्यय होंगे।

हमारे में मति और श्रुति यह दो ज्ञान ही मौजूद हैं और यह दोनों ज्ञान पांच इन्द्रिय और मन के आधीन हैं क्योंकि हमारे आत्मा का इतना ज्ञान मन्द है कि यह बिना इनकी

तत्वों का श्रद्धान तो है परन्तु कभी कभी निश्चयनय से सर्व जीव एकही स्वरूप हैं। इस बात को भूल जाना, भेद समझने लगना, अथवा सच्चे देवादि का स्वरूप तो मालुम है परन्तु कभी कभी ऐसा भ्रम करना कि शांतनाथ जी शांति के कर्त्ता हैं, पार्श्वनाथ जी ही हमारे सुख के दाता, याने कभी कभी सर्व ही अरहंत देवों को एक सा न समझना।

चारित्र मोहनी के २५ भेद हैं। इनमें नौ नोकषाय कहलाते हैं और १६ कषाय हैं।

नौ भेद नोकषाय के यह हैं—

(१) हास्य—जिसके उदय से हास्य (मज़ाक) प्रकट हो। (२) रति—जिसके उदय से संसारी चीजों में तवियत लीन हो जाय। (३) अरति—जिसके उदय से कुछ सुहावे नहीं। (४) शोक—जिसके उदय से किसी इष्ट के वियोग होने से रंज करे। (५) भय—जिसके उदय से दुःखकारी चीज़ से डरे। (६) जुगुप्सा जिसके उदय से अपना दोष (ऐब) छिपावे और दूसरे के दोष देख परिणाम मैले करे याने नफरत करे। (७) स्त्री वेद—जिसके उदय से स्त्री सम्बन्धी भाव होय। (८) पुरुष वेद—जिसके उदय से पुरुष सम्बन्धी भाव होय। (९) नपुंसक वेद—जिसके उदय से नपुंसक सम्बन्धी भाव होय।

१६ कषाय यह हैं—क्रोध (गुस्सा), मान (गरूर), माया (कपट दगाबाजी), लोभ (लालच) यह चार कषाय हैं। इन चारों के चार चार भेद हैं याने अनन्तानुबन्धी क्रोध व

सहायता के नहा देख सकता जैसे कि कमती देखन वाले को चश्मे की सहायता के बिना ठीक नहा मालम पडता और जस चश्मे मे यदि कुछ दोष हो जाय तो देख न सके या कम देख सके व और का और दीखे इसी तरह याद पाच इन्द्रिय व मन विगडे हों व किसी में दोष होय तो उनके द्वारा भी जो जानना होगा वह कमती बढती और का और व नहीं जानना होगा। यही कारण है कि वृद्ध अवस्था में इन्द्रियों की शिथिलता होने पर जानने में भी कमी हो जाती है और इन्द्रिय और मन के ठीक रहने से जानपना भी ठीक होता है जसे जितना तेज चश्मा होगा उतना तेज दिखलाई देगा जितना मन्द होगा उतना ही मन्द प्रगट होगा—अब प्रश्न केवल इतना रहा है कि ऐसे जीवों का ज्ञान इतना क्यों मन्द हो रहा है उसके लिये ऊपर लिखे अनुसार फिर भी कहना होता है कि एक प्रकार का मल है जो अनादिकाल से हमारे आत्मज्योति को प्रगट नहीं होने देता—

चौथा अध्याय

अजीवतत्व

'अजीव' उसे कहते हैं जो जीव नहीं अर्थात् जिस वस्तु में अपने आप चेतनता यानि देखने जानने की शक्ति नहीं। अजीव पांच प्रकार के जैनमत में कहे हैं, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ॥

दयामयी उपदेश से भरा है) की निन्दा करना यानी झूठा दोष लगाना। (३) संघ (मुनियों के संघ) की निन्दा करना व झूठा दोष लगाना। (४) देव (भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी, कल्पवासी) की निन्दा करना व झूठा दोष लगाना याने कहना कि मांसभक्षी हैं। (५) धर्म (दयामयी धर्म) की निन्दा करना व झूठा दोष लगाना।

इन ५ बातों की तरफ मन वच काय चलने से तथा अन्य पदार्थों के सच्चे स्वरूप को मिथ्या कहने और मानने से दर्शन मोहनी कर्म का आश्रव होता है।

कषाय [क्रोध, मान, माया, लोभ] के होने से जो परिणाम में तेजी होना और इसी कारण वचन भी तेज निकालना व शरीर से भी खोटे आचरण करना, इनसे चारित्र मोहनी के कषाय वेदनी कर्म का आश्रव होता है। इसी तरह नोकषाय वेदनी का आश्रव इस भांति है कि दीन दुःखी की हँसी करने व बेमतलब बकने से हास्य का (१) योग्य काम को मना नहीं करने व दूसरे की पीड़ा को दूर करने इत्यादि से रति का (२), खोटी क्रिया में उत्साह, दूसरे को पीड़ा देने, व पापी की संगति करने से अरति का (३), आप रंज में रहने तथा दूसरों को रंज देने तथा दूसरे का रंज देख कर खुश होने से शोक का (४), आप भय में रहना व दूसरे को डर दिखलाना व निर्दई होकर दु:ख देने से भय का (५), दूसरे की बुराई करने व अच्छे आचरणवाले से घृणा (नफरत) करने से जुगुप्सा का (६), अतिकाम—तीव्रता से

यह लोक सब जगह छः द्रव्यों से भरा हुआ है। वह छः द्रव्य ऊपर कहे हुए पांच तरह के अजीव और एक जीव द्रव्य हैं॥

इस पांच अजीवों मे धर्म, अधर्म, आकाश और काल तो बिलकुल अमूर्तिक है। सिर्फ पुद्गल ही मूर्तिक है॥

इस जगत मे जितनी वस्तुएं इन्द्री गोचर हो रही हैं सब पुद्गल ही हैं॥

हमारा बहुत बडा सम्बन्ध पुद्गल से रहता है इस कारण पहले पुद्गल नामा अजीव ही के भेदो का वर्णन प्रगट किया जाता है॥

पुद्गल छः प्रकार के होते है (१) सूक्ष्म सूक्ष्म (२) सूक्ष्म (३) सूक्ष्म स्थूल (४) स्थूल सूक्ष्म (५) स्थूल (६) स्थूल स्थूल॥ सूक्ष्मसूक्ष्म पुद्गल का एक परमाणु होता है याने इतना छोटा हिस्सा कि जिसका फिर भाग न हो सके॥

सूक्ष्म—कर्म वर्गणा के पुद्गल है जिन से बंधा हुआ यह आतमा संसार चक्र मे घूमा करता है और जिन के छूट जाने से यह जीव मुक्त कहलाता है॥

सूक्ष्म-स्थूल वह चीज है जोकि देखने में सूक्ष्म है याने चर्म नेत्रों से नही दिखलाई पडती परन्तु अपने कार्य में बहुत स्थूल है याने काम उसका बहुत बडा मालूम होता है जैसे शब्द (आवाज) खुशबू जोकि देखने में नही आते परन्तु काम इनका साक्षात् प्रगट है—

स्थूल-सूक्ष्म वह पुद्गल है जो देखने में बहुत मालूम हो पर सूक्ष्म इतना कि आप उसे हाथ से पकड़ नही सकते जैसे चांदनी, धूप, छाया आदिक॥

छोटी उमर में विवाह कर उनको मिट्टी के खिलौने समझ कर तमाशा देखने में आनन्द मानते, तथा उनको विद्या रत्न से विभूषित करने की परवा रखते नहीं, अपने समय को चमतलब चौसर सतरंज आदि में खोने से कुछ दोष मानते नहीं, अपने भाइयों को दिन पर दिन हीन दीन देख कर उनके सुधार व सुख के लिये प्रयत्न करते नहीं, जैन जाति की उद्धार करनेवाली भारत जैन महामंडल से बेपरवाह रह कर उसका सहायता देते नहीं, व्यापार की वृद्धि न्याय और सत्य से होती है उस पर ध्यान रखते नहीं। विशेष क्या कहिये, उत्तम मनुष्य कुली कहला करके भी साधारण मनुष्य भी होने की इच्छा रखते नहीं। भाइयो! मोह छोड़ो। यह महा दुःखदाई है। इसकी संगति से जीवों ने त्रास पाई है। जिन्होंने इस मोह के साथ बुराई की है उन्होंने व्यापार, धन, मान्यता, देशोपकार, जीव विचार आदि में उन्नति पाई है।

अध्याय नवां।

५—आयुकर्म

आयुकर्म—वह कर्म है जिसके कारण यह जीव इस संसार में नाना प्रकार की योनियों में जा शरीर में निवास कर भ्रमण करता हुआ कालक्षेप करता है।

इसके मुख्य ४ भेद हैं—नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव। (१) जिसके कारण नरक में पैदा होकर नारकी के शरीर को

स्थूल यह पुद्गल है। जो बहनेवाली चीज है याने जिसके टुकडे कर देने में फिर यह बिना किसी चीज की सहायता के घेमें ही मिलजावे जैसे पानी, दूध, तेल आदिक ॥

स्थूल स्थूल यह पुद्गल हैं जिनका टुकड़ा किये जाने से बिना दूसरी चीज का मदद के फिर न जुड सकें जैसे पत्थर मिट्टी लकडी आदिक ॥

इन छः भेदों में हमारे जीव के साथ विशेष कर सम्बन्ध इस सूक्ष्म जाति के पुद्गलों से है जोकि हमारे जीव को स्वभाव जनित निजानन्द प्राप्त करने में बाधा डालते हैं इसी लिये हमें ऐसे कर्म वर्गणा जाति के पुद्गलोंका विशेष हाल कहना उचित है ॥

कर्म्म वर्गणा के पुद्गलों याने कर्मों का सम्बन्ध हमारे जीव से अनादि काल से है और यही एक प्रकार का मल है जोकि जीव को अपने स्वाभाविक कार्य्य के करने में बाधा डालता है और जब तक यह कर्मरूपी मैल हमारी आत्मा से मिला है तब तक यह आत्मा स्वाधीन रह कर अपने अपने ज्ञान दर्शन सुख वीर्य स्वभाव को प्रकाश नहीं आप कर सकता। यह कर्मरूपी मल हमेशा से इस जीव के साथ लगा हैं कोई नया नहीं परन्तु इसके निज स्वभाव से भिन्न है। जैसे खान से निकलाहुइ धातु मिट्टी आदि से मिली हुई निकलना है और मिट्टी के अलग करने से वह शुद्ध साफ हो जाती है, मिट्टी का स्वभाव उस धातु के स्वभाव से भिन्न है। उसी तरह आत्मा से अनादि काल का मिला हुआ यह भिन्न

प्रकार का दुख होता है, इनका वर्णन यहां पर न कर केवल इतना कह देनाही बस होगा कि असहाय और छोटे छोटे पशु पक्षियों को जो कुछ दुख आप अपनी आंख के सामने देखते हैं, इससे करोड़ गुना दुख नारकियों को कहा जाय तो अन्युक्ति नहीं होगी। कर्म के परमाणुओं के बल से यह आत्मा जिसका कि अपना स्वभाव ऊंचे जाने का है, नीचे को ओर आकर जन्म लेता है। जैसे आग की लो, जिस का स्वभाव ऊंचे जाने का है, पवन के बल के कारण इधर उधर का गमन करती है।

तिर्यंच् आयु के आश्रव का कारण मायाचार करना है, अर्थात् जा जीव धर्म के उपदेशक अपने को प्रकट करके अपने ज्ञानी मतलब को लिये हुए उपदेश कर दूसरों को झूठे मार्ग पर लगाकर अनर्थ कराते हैं, ऐसे जीव पशु-पर्याय पाते हैं। जा दूसरे को झूठा दोष लगा कर उसका अपमान करके अपने में नहीं होते गुणों का प्रकट कर अपना मान चाहते है, ऐसे कपोतलेश्या के रंग के परिणामवाले जीव पशुगति के पात्र हैं। जो जीव अपनी किसी अच्छी चेतन व अचेतन जीव के बिछुड़ने पर शोक करते हैं, व बुरी चेतन व अचेतन चीज़ के पास रहते हुए रंज किया करते हैं, व आप रोगी होकर उस रोग के कारण उपाय तो नहीं बल्कि सोच किया करते हैं, व जिन जीवों की इच्छाएं यह रहती हैं कि हमे मरने के बाद खूब धन सम्पदावाली पर्याय प्राप्त हो, हम राजा महाराजा होकर खूब चैन उड़ावें, ऐसे आर्त्तध्यानी जीव पशुगति में आकर भूख,

स्वभावधारी कर्मरूपी मल प्रयत्न करने से दूर होता है और यह आत्मा शुद्ध हो सकता है ॥

यह कर्म वर्गणा के परमाणु जोकि संसारी जीवों को प्रसे रहते हैं इतने सूक्ष्म हैं कि अनंतानंत इस जीव के साथ रहते हुए भी इन चर्मनेत्रों से दिखलाई नहीं पड़ते इसके लिये हमें आश्चर्य न करना चाहिये क्योंकि वायुकाय के पुदगल इतने भारी होने पर भी कि बड़े बड़े पहाड़ के शिखरों को अपने धक्के से गिरा दें दिखलाई नहीं पड़ते इसी प्रकार बहुत सी ऐसी चीज़ें तलाश करने से मिलेंगी जोकि नहीं दिखलाई पड़तीं। यह कर्म वर्गणा कुछ एकही रूप से अनादि काल से नहीं आ रही है, हर एक समय (जोकि काल का सब से छोटा हिस्सा है) में पुराने कर्म के पुद्गल झड़ते जाते हैं और नये मिलते जाते हैं।

पुराने कर्म आत्मा के साथ रहने से जिस समय वे रस देने को सन्मुख होते हैं अज्ञानी आत्मा को उस तरह के कर्म के फल के भोगने के लिये उद्यत होना होता है ज्ञानवान आत्मा कर्म का फल कमती बढ़ती भी भोग सकता है यदि वह भोगने वाला आत्मा समभाव से याने यह समझ कर कि यह मेरे ही किये हुए कर्म का फल है उस दशा को सह ले और अपने भाव बिलकुल कलुषित व हर्षित न करे तो उस कर्म फल भोगने की अवस्था में उसके नए कर्म्मों का बन्धन नहीं होगा किन्तु यदि कुछ भी हर्ष विषाद होगा तो नये कर्म्मों का अवश्य बंधन होगा जैसे किसी जीव के कर्म उदय के वंश से कोई रोग उत्पन्न होने के कारण बन गए। उस समय यदि

कर व भावों की शुद्धता को न पहिचान कर शरीर को तरह तरह कष्ट देते हैं इस निश्चय से कि इसके बाद अच्छी गति होगी, ऐसे जीव भी मर कर नीच जाति के देव होते हैं। जो जीव सम्यग्दृष्टी होते अर्थात् जिनके आपा पर का अच्छी तरह ज्ञान और निश्चय होता है, ऐसे जीव स्वर्गवासी देवही होते हैं। भोगभूमि के पैदा होने वाले मनुष्य जो शील और व्रत नहीं पालते हैं अपने सरल स्वभाव के कारण देवगति में गमन करते हैं। देवगति में इन्द्रियाधीन सुख की बाहुल्यता है तौ भी उस स्थान में मनसम्बन्धी अनेक दुख हैं, जैसे ईर्षा, द्वेष, अपमानादिक। भाइयो! यहां संक्षेप में चारो आयु में जीवों को रखनेवाले कर्मों के आश्रव का वर्णन किया है। विशेष जानने की इच्छा करनेवालो को श्री सर्वार्थसिद्धि जी को भले प्रकार पढना चाहिये। प्रयोजन कहने का यह है कि मनुष्य भव पाकर हमको वह कर्तव्य करने योग्य है जिससे हमारी अवस्था दिन पर दिन उच्च होती चली जाय। क्योंकि जीवन संसार में थोड़ा है। इस थोड़ी सी आयु पाकर यदि हमने अपने आत्मा का निर्मल करने के यत्न नहीं किये अर्थात् संसार से मुक्ति पाने की चेष्टा नही की तो फिर हमारा सुधार कैसे होगा। यह मनन कदाचित जीवों की अज्ञानता में दब जाय और हम बावले की तरह कर्मरूपी नशे से प्रेरे हुये संसार वन के चारों मार्गों की अनेक गलियों में भटके रहें व इस भयानक वन से निकलने का मार्ग कभी नही पावें तो इसमे कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु यदि इस संसार वन मे धीरे धीरे सोचते विचार करते कदम रख रख कर, इस वन की मोहनी वस्तुओं से मोह न करते हुये, न

यह रोगी न घवडा कर,समभाव रक्खे ऐसा समझ कर कि यह राग की उत्पत्ति मेरे ही बाधे हुए पूर्व कर्म का फल है, तो उसके उस जाति के नए कर्म्मों का बन्धन न होगा और यदि इसक प्रतिकूल घवडाएगा, दुखी होगा, तो अवश्य उसके उस समय की भावों में तीव्रता व मदता के अनुसार उसी जाति के कर्म परमाणुओं का बधन होगा जोकि आगामी फिर कभी फल देने के समुग होवेंगे। यह कर्मों का चक्कर उस सूत घतार के चक्कर के समान है जोकि एक तरफ से खुलता जाय और दूसरी तरफ से बधता जाय। कर्म्म चक्कर, का खालने वाला बाधने वाला एक जीव ही है। यदि यह प्रयत्न करे तो बधे कर्म विना रस दिये ही झड जाय और नए कर्म बधें ही नहीं॥

यहा पर इतना कह देना भी अनुचित न होगा कि यह ससारी जीव विलकुल कर्मों के वश नहीं है यदि यह प्रयत्न करे तो पहिले के कर्मो को अपने फल देने के पहिले ही दूर कर सकता है तथा उनके जोर घटा सकता है और उनका जोर वढा भी सकता है। इसका वर्णन "निजरा" तत्व में किया जायगा॥

हम यहा पर अपने उन भाइयों का ध्यान इस विषय, पर आकर्षण करते ह जोकि कर्मो के आधीन अपने को मान कर निरुद्यमी रहते ह। जैन मत का कभी यह सिद्धात नहीं है कि हम कर्मों ही के आधीन है। जैन मत के सिद्धात को जैसा ऊपर वर्णन किया गया है जानने वाले सदा उद्यम के घोडे पर सवार रह कर कर्मों को अपने ही वश में समझ कर अपनी

जो गर्मी, सरदी, आग, पानी, मिट्टी आदि वस्तुओं के संयोग से तरह तरह के लट, जूयें आदिकों के शरीर बनते हैं उसे सन्मूर्छन कहते हैं। यह दोनों तरह के शरीर औदारिक कहलाते हैं।

(ख) वैक्रयक-देव व नारकियों के शरीर जिस तरह के परमाणुओं से बनते हैं उसे वैक्रयक कहते हैं, अर्थात् इनमें सकुड़ जाने, फैलजाने, आदि की शक्ति होती है, तथा यह परमाणु पारे की तरह भिन्न हो जाने पर भी शीघ्र मिल जाते हैं।

(ग) आहारक—एक प्रकार का बहुत ही महीन पुद्गल के परमाणुओं का शरीर जो ऋद्धिधारी मुनि के मस्तक से निकलता है और केवल ज्ञानी के चरणों को छू कर लौट आता है, इसके जाने आने में कुछ समय लगते हैं। जब मुनि को कोई भारी संदेह होता है तब वह ऐसा करते हैं।

(घ) तैजस—यह बहुत ही महीन तेज रूप परमाणु हैं जो कि ससार के सब जीवों के साथ सदा रहते हैं और इनका वेग किसी किसी ऋद्धिधारी मुनि में प्रकट हो जाता है, अर्थात् जब मुनि के चित्त में अधिक दया आती है तो दाहने कन्धे से यह तैजस शरीर निकल कर बहुत शीघ्र उनके विचारे हुए क्षेत्र में भ्रमण कर लौट आता है और उतने स्थान के रोगादि को शांत कर देता है। इसी प्रकार जब किसी मुनि के क्रोधकी आग भड़क उठती है और वह चितमें जिनसे क्रोध हुआ उनका नाश विचारते हैं, तब बायें कन्धे से एक तेजका पुंज निकलता है और वह उनको भस्म कर मुनि को

आत्म उन्नति की ओर दत्तचित्त रहते हैं। जैनमत कहता है कि जहां आलस्य है वहां पाप है। श्री उमा स्वामी कृत तत्वार्थ सूत्र में हिंसा का भेद इस प्रकार लिखा है कि प्रमाद के योग से जो प्राणों का नाश करना है, वह हिंसा है। आलसी पुरुष न खाने में न पीने में न उठाने में न धरने में न बात करने में किसी ही काम में उचित यत्न न रखने के कारण जीव हिंसा के पाप के भागी होते हैं। जो भाई जिनेन्द्र दर्शन करने का उद्यम किंचित भी न करने पर और पूछने पर यह जवाब दे देते हैं कि भाई क्या करें हमारे भाग्य ही में नहीं जो थोड़ी सी भी फुरसत मंदिर जाने को मिले वे लोग और भी ज्यादा पाप के भागी होते हैं।

इस विषय का विशेष वर्णन जानना हो तो श्री पुरुषार्थ सिद्धयुपाय ग्रन्थ की स्वाध्याय करके जान सकते हैं।

यहां पर यदि कोई प्रश्न करे कि कर्म वर्गणा के पुद्गल मूर्तिक हैं और आत्मा अमूर्तिक है किस प्रकार अमूर्तिक को मूर्तिक घेर सकता है इसका समाधान इस प्रकार है कि यह संसारी जीव अपनी वर्तमान दशा में अमूर्तिक नही किन्तु मूर्तिक है क्योंकि अनादि से कर्मों करके घिरा हुआ है उसी कर्म के साथ मे और कर्म आकर मिल जाते हैं, शुद्ध जीव कर्मों से सम्मिलित नही हो सकता, जिस समय जीव के भाव अपने स्वभाव से भिन्न होते है उस समय कर्म वर्गणा के परमाणुओ को जोकि तीनों लोक में भरे हैं यह संसारी जीव आकर्षित कर लेता है। इस लिये कर्म्म के फन्दों से छूटनाही इस जीव का परमहित है यह कर्म्म आठ ८ प्रकार, के होते हैं॥

[ख] न्यग्रोध परिमंडल संस्थान-शरीर का आकार ऊपर वड़ा और नीचे छोटा हो। जैसे वड़ वृक्ष।

[ग] स्वातिक सस्थान—शरीर का आकार नीचे चौड़ा ऊपर सकुब्जक।

[घ] कुब्जक संस्थान-पीठ—वीच में बड़ी ऊपर नीचे हल्की हो। इसको कुवड़ापन भी कहते हैं।

[च] वामन संस्थान—हाथ पैर छोटे हों उदर मस्तक बड़ा हो अर्थात् वौनापन हो।

[छ] हुडक सस्थान—शरीर के सब अंग उपग नीचे ऊंचे वेढगे हों।

६ संहनन—जिनके उदय से हाड़ों का विशेष वंधन हो। यह भी ६ प्रकार का है—

[क] वज्र ऋषभ नाराच संहनन—जिस शरीर में संहनन कहिय हाड़, ऋषभ कहिये नश के वेठन, नाराच कहिये कीले, यह तीनों वज्रमय कठोर हों।

[ख] वज्र नाराच सहनन—जिसमें हाड़ और कीले वज्रमय हों पर नश के वन्धन वज्रमय न हों।

[ग] नाराच संहनन—जिसमें हाड़ की सन्धि कीलों से कीलित हो।

[घ] अर्धनाराच संहनन—जिसमें हाड़ की सन्धि में कीले आधे हों, एक तर्फ हो पर दूसरी ओर न हो।

[च] कीलक सहनन—जिसमें हाड़ को सन्धि छोटे कीलों से मिला हो।

[छ] असंप्राप्तासृपाटिक संहनन—जिसमें हाड़ की सन्धि में अन्तर [फरक] हो। चौगिरद वड़ी छोटी नस

(१) ज्ञानावरणी (२) दर्शनावरणी (३) अंतराय (४) मोहनी (५) आयु (६) नाम (७) गोत्र (८) वेदनी ॥

इन में से पहले के ४ कर्म घातिया कहलाते हैं क्योंकि यह जीव के स्वभाव को आवरण करने वाले हैं और अन्त के ४ अघातिया क्योंकि यह जीव के स्वभाव को न ढक कर केवल ऐसे कारण मिलते हैं जोकि जीव को स्वभाव भूलने के कारण हो जाते हैं ॥

अध्याय पांचवां

[आठ कर्म]

(१) ज्ञानावरणी कर्म

इस कर्म का यह स्वभाव है कि इस के सम्बन्ध से आत्मा का ज्ञान प्रगट नहीं होता तथा कम प्रगट होता है यह पांच प्रकार का होता है ॥

(१) मति ज्ञानावरणी—जो मति ज्ञान को न होने दे । मति ज्ञान वह ज्ञान है जो कि पांच इन्द्री और मन के द्वारा किसी पदार्थ का जानें जैसे हम पीली वस्तु को आंख इन्द्री से देख कर उसके और लक्षण जान कर यह निश्चय करते हैं कि यह सोना है पीतल नहीं । यह सब ज्ञान 'मति ज्ञान' है । मति ज्ञाना वरणी कर्म के घटती बढ़ती होने के कारण जीवों की साधारण बुद्धि (Common Sense) कमती बढ़ती होती है इसके ३३६ भेद हैं जिसका वर्णन श्री सर्वार्थ सिद्ध जी ग्रन्थ से जानना योग्य है ॥

१ अगुरुलघु—जिसके उदय से देह न लोहे के पिंड की तरह भारी हो और न आक की फफूंदी की तरह हलकी हो। [यहां अगुरुलघु जो द्रव्य का स्वभाव है उससे प्रयोजन नहीं]

१ स्वघात—जिसके उदय से अपने शरीर से आपका घात करे-जैसे बड़ा, सींग, लम्बा स्तन बड़ा पेट।

१ परघात—जिसके उदय से ऐसा अंग हो जिससे दूसरे का घात हो। जैसे तीक्ष्ण सींग व नख, बिच्छू का डङ्क आदि।

१ आताप—जिसके उदय से आतापमय शरीर पावे। जैसे सूर्य के विमान में पृथ्वी कायिक जीव। इन जीवों को स्वयं धूप की गरमी नहीं मालूम होती जब कि दूसरों को बहुत आताप होता है।

१ उद्योत—जिसके उदय से उद्योत रूप शरीर पावे। जैसे चन्द्र के विमान में पृथ्वी कायिक जीव।

१ उच्छ्वास—जिसके उदय से श्वासोश्वास आवे।

१ विहायो गति—जिसके उदय से आकाश में गमन हो।

१ प्रत्येक शरीर—जिसके उदय होने से एक आत्मा एक शरीर को भोगे।

१ साधारण—जिसके उदय से बहुत जीव भोगने योग्य एक शरीर पावे।

१ त्रस—जिसके उदय से दो इन्द्री से पंचेन्द्री तक में उपजे।

१ थावर—जिसके उदय से १ इन्द्री पैदा हो।

१ सुभग—जिसके उदय से दूसरे को अच्छा मालूम हो।

(२) श्रुति ज्ञानावरणी—जो श्रुति ज्ञान को न होने दे। श्रुति ज्ञान मति ज्ञान पूर्वक होता है अर्थात् पदार्थों का विशेष हाल व भेद मालूम करना यह श्रुति ज्ञान का विषय है ११ अङ्ग १४ पूर्व का ज्ञान सब श्रुति ज्ञान है॥

(३) अवधि ज्ञानावरणी वह ज्ञान है जो अवधि ज्ञान को न होने दे। अवधि ज्ञान वह ज्ञान है जिसके द्वारा तपस्वी मुनि अपने व और जीवों के पूर्व जन्म के चरित्रों को व आगामी चरित्रों को विचार करने से मालुम करते हैं यह ज्ञान रूपी पदार्थों ही को जान सकता है। यह ज्ञान देव और नारकियों के भी होता है जिससे वे अपने पूर्व भवका वृत्तांत विचार करने से जान लेते हैं॥

(४) मन पर्यय ज्ञानावरणी—मन पर्यय ज्ञान को नहीं होने देती—मन पर्यय ज्ञान वह ज्ञान है जो कि दूसरों की मन सम्बन्धी सूक्ष्म बातों को व सूक्ष्म पुद्गल द्रव्यों के चरित्र को जान लेता है॥

(५) केवल ज्ञानावरणी—केवल ज्ञान को नहीं होने देता केवल ज्ञान वह ज्ञान है जो कि सर्व पदार्थों की कुल पर्य्यायों को एक ही समय में मालुम करता है॥

इस प्रकार ज्ञानावरणी कर्म्म के पांच भेद हैं। इस कर्म के आश्रव होकर बंधने (अर्थात् कर्मों का आकर आत्मा से सम्बन्ध करने) में नीचे लिखे कारण होते हैं। जब मन वचन और काय चलायमान होते हैं उसी समय कर्मों का आगमन होता है जैसे चुम्बक पत्थर लोहे को घसीट लेता है इसी

१ अनादेय—जिसके उदय में प्रभावहित शरीर हो।
१ यशस्कीर्ति—जिसके उदय से गुण प्रकट हो।
१ अयशस्कीर्ति—जिसके उदय से अवगुण प्रकट हो।
१ तीर्थंकर—जिसके उदय से तीर्थंकर पद का शरीर हो।

यह २८ अपिंड प्रकृति हैं—

सब मिलकर ९३ प्रकृति नाम कर्म की हैं। अब यह देखना चाहिये कि यह नाम कर्म क्यों कर संसारी जीवों के बंधते हैं कि जिनके उदय से ऊपर कही अवस्थायें भोगनी पड़ती हैं, क्योंकि यह "कर्म" का नियम कारण और कार्य के आधीन है। इसीको Cause and effect कहते हैं और इन कर्मों का बन्धन राग और द्वेष से होता है जैसा कि "Mr. C. W. Leadwater का कथन है।

"If a man has within him only pure, high, and unselfish desires and emotions, he will chiefly set into vibration the more refined matter of that astral body: if, on the contrary his desires, emotions and passions are coarser and selfish, almost the whole of them will express themselves in the lower, denser, grosser parts of that astral vehicle."

भावार्थ—अच्छे विचारों से शुभ और बुरे विचारों से अशुभ कर्म्म बँधते हैं। पस यह कर्म्म समय समय पर उदय

प्रकार सरागी मन वचन काय कर्मों को प्रसीट लेते है ॥
ज्ञानावरणी कर्म के आने (आश्रव) के कारण—

१—प्रदोष-तत्व ज्ञान की कथनी करने वाले से व उत्तम ज्ञान के देने वाले से ईर्षा भाव रखना प्रशंसा न करके चुप रहना ॥

२—निन्हव-आप पदार्थों का हाल जानता हुआ भी अगर कोई पूछे तो यह कहना कि हम नहीं जानते भावार्थ अपने ज्ञान को दूसरे से छिपाना ॥

३—मात्सर्य—अपने को शास्त्र ज्ञान व पदार्थों का ज्ञान होते सते और आप सिखावने योग्य होते सते भी दूसरे को न सिखलाना यह भाव रख कर कि यदि दूसरा सीख जावेगा तो मेरी बराबरी करेगा ॥

४—अन्तराय-ज्ञान के अभ्यास में विद्या की उन्नति में विघ्न करना, विद्योन्नति के कारणों को न होने देना ॥

५—असादना-दूसरे के प्रकाश किये हुए ज्ञान को वर्जना याने मना करना ॥

६—उपघात-ठीक ठीक ज्ञान में भी दोष लगाना। यह छः तो मुख्य कारण ज्ञानावरणी कर्म के आश्रव के हैं। इनके सिवाय विद्या पढ़ने में आलस्य, शास्त्र व पुस्तक पढ़ने में अनादर, आप बहुज्ञानी होकर गर्व करना, झूठा उपदेश देना, ज्ञानवानों का अपमान करना, खोटे शास्त्र का लिखना छपाना व बेचना इत्यादि जो जो बातें किसी प्रकार से भी

कारण भावना का विचार किया जाता है। इन भावनाओं का वर्णन जैन शास्त्रों से देख कर मालूम कीजियेगा।

अध्याय ग्यारहवां

७—गोत्रकर्म।

यह वह कर्म है जिसके उदय से यह जीवात्मा ऐसे कुल का संयोग पावे जिससे इसको दुख की प्राप्ति हो। यह दो तरह का होता है।

१ उच्च गोत्र—अच्छे चरित्र वाले लोकमान्य कुल में जिसके उदय से जन्मे।

१ नीच गोत्र—खोटे आचरण वाले लोकनिंद्य कुल में जिसके उदय से पैदा हो। जहां आपको भी हिंसा चोरी आदि दुष्ट कर्म करने का समागम सहज मे मिल जाय।

इस कर्म के आश्रव होकर आत्मा के साथ मिलने में नीचे लिखे कारण हैं।

१ परनिन्दा, आत्मप्रशंसा—दूसरे में अवगुण हों वा न हों, परन्तु किसी अपने विषय के मतलब से दश आदमियों में उनकी बुराई करनी और अपने मे गुण हो वा न हों, किसी अपने विषय कषाय के मतलब (धनादि का लोभ) से दश आदमियों के सामने अपनी तारीफ़ करनी।

२ पर-सत-गुणाच्छादन आत्म असत्गुणाच्छादन—दूसरे में गुण होते हुए भी ज़ाहिर न हो ऐसी चाह व कोशिस

अपने व दूसरे के ज्ञानाभ्यास में रोकने वाली हैं वे सब ज्ञाना-
वरणी कर्म के आश्रव के कारण हैं ॥

हे हमारे प्यारे जैनी भाइयो ! देखो आपका प्राचीन शास्त्र
क्या कहता है—क्या आप लोगों को ज्ञानाभ्यास के कारणों
को न जारी करने के कारण तथा विद्योन्नति में, आलस्य करने
के कारण ज्ञानावरणी कर्म का आश्रव न होगा ? क्या वह
विद्वान पंडित जोकि आप ज्ञान से परिपूर्ण होकर और अपने
ज्ञानरूपी ज्योति से हजारों के अज्ञान रूपी अंधेरे को मेटने की
योग्यता रखने पर भी आलस्य करते हैं तथा दूसरों को वस्तु
का स्वरूप भले प्रकार यह समझ कर नहीं सिखलाते हैं कि
यह जान कर हमारी बराबरी करेंगे व हम से ज्ञान में उच्च
हो कर हमारे मान में विघ्न करेंगे ज्ञानावरणी कर्म के आश्रव
के भागी नहीं हैं ? क्या वह हमारे सुख सेवी (पिन्शनयाफ़्ता)
भाई जिनको सरकार पेन्शन इसी गरज से देती है कि वे
अपने अन्त के दिन सुख शान्तता पूर्वक बिताते हुये अपने
अनुभव से हासिल किये हुये ज्ञान को दूसरों को प्रदान करें
यदि ऐसा न करके अपने ज्ञानको छिपा कर रक्खें तो ज्ञाना-
वरणी कर्म के आश्रव के भागी नहीं है ?

हे हमारे जैनी भाइयो ! आप अपने प्राचीन शास्त्रों को
पढ़ कर उस पर चलने की कोशिश कीजिये। आपके शास्त्र
जब पुकार पुकार कर कहते हैं कि "ज्ञान बिना करनी दुखदाई,
अज्ञानी कोटि वर्ष तप तपे तो जितने कर्मों का क्षय हो उतने
कर्मों को ज्ञानी एक क्षण भर तप करके नाश कर सकते हैं" तो
क्यों आप ज्ञान शून्य अवस्था अपनी करते जाते हैं। आपने अपने

४ उपभोगान्तराय—जिसके उदय से संसार की उपभोग करने योग्य वस्तुओं को काम में लाने की चाहना व कोशिश करे, पर काम में न ला सके।

[भोग—उन वस्तुओं को कहते हैं जो एक बार काम में आवे फिर किसी काम की न रहें। जैसे भोजन, सुगन्ध आदि। उपभोग—उन वस्तुओं को कहते हैं जो बार बार काम में आवें। जैसे मकान कपड़े आदि]

५ वीर्यांतराय- जिसके उदय से किसी काम के करने का उत्साह करे पर वह उत्साह काम न कर सके।

इस अंतराय कर्म के आने और आत्मा के साथ बंधने में कारण विघ्न का डालना है। कोई दान देता हो व देने की इच्छा करता हो उसको किसी न किसी प्रकार दान देने से रोकने की चाह व कोशिश करना, कोई को लाभ होता हो उसको लाभ न होने देने की चाह व कोशिश करना, दूसरे के भोगने व उपभोगने योग्य वस्तुओं को बिगाड़ने की चाह व कोशिश करना दूसरे की शक्ति व उत्साह को बिगाड़ने की चाह व कोशिश करना यह सब अंतराय कर्म के आश्रव के कारण है। इसके सिवाय और जितने ऐसे ऐसे काम हैं जिनके करने से हमारा व हमारे आधीन स्त्री व बालकों का विगाड़ होता है, ये सब अंतराय कर्म के आश्रव के कारण है। जैसे लड़के व लड़कियों को विद्या न पढ़ाने से उनके ज्ञान प्रकट होने मे विघ्न पड़ने से, तथा बालकों की शादी छोटी उम्र मे कर देने से जिससे उनका मन विद्या लाभ करते करते रुक जाय, व अपने अधीन नौकर चाकर व

को अज्ञानी बनाकर अपना धर्म कर्म राज्य पाट सब गँवा दिया। आपका रहा सहा व्यापार भी चला जा रहा है। आप बराबर देखते हैं पर कुछ उपाय नहीं करते। यह ज़माना आलस्य का नहीं, चेष्टा का है। यदि उद्योगी पुरुष हों तो बहुत कुछ कर सकता है। आपकी सत्ता भी आप से निकल कर आप से ज्यादा जानकारों (अंग्रेज व्यापारी) के हाथ में चली जा रही है। आपकी रुई की सत्ता कुछ दिनों में युरुपियन उद्योगी व्यापारियों के हाथ में चली जायगी। आप यह देखते हुए भी कि आपके भाई जापान निवासी पुरुषों ने कितनी उन्नति अपनी की है, आप बिलकुल बे-खबर हैं। जापान के लोग बौद्धमती हैं। वे भी जैन धर्म के माफिक ज्ञान को सर्वोत्तम समझते हैं। उन्होंने शास्त्रानुसार आज्ञा का मान ज्ञान को इतना बढ़ाया कि ५० वर्ष के भीतर भीतर कुल सौदागरी की चीजें (दियासलाई, बटन, सुई, कैंची, कपड़ा इत्यादि रोज की काम की चीज) जो पहले विलायत से मंगाते थे अपने घर में प्रस्तुत करने लगे। भाइयो! जापान की तरक्की का केवल कारण विद्या का प्रचार है। मि० धर्मपाल ता० २८ अप्रैल १९०४ के "पेडवोकेट" में लिखते हैं कि जापान की तरक्की का असली कारण विद्या का प्रचार है। जापान में कोई भी अनपढ़ बच्चा नहीं है। 'There are no illiterate children in the land of the Rising Sun" यहां के अनाथ बालकों की यहां की म्युनिसिपेलिटी और सर्कार दोनों बड़ी खबरगीरी रखते हैं। छोटे छोटे बालकों को कारीगरी सिखलाई जाती है। मि० धर्मपाल कहते हैं कि सन् १८८९ में जापान

मदद करे जैसे मछली को चलने के लिये पानी की जरूरत है, पानी मछली को प्रेरणा नहीं करता है कि चलो किन्तु विना पानी के नहीं चल सक्ती इसी प्रकार धर्म द्रव्य प्रेरणा करके जीव और पुद्‌गल को नहीं चलाता है किन्तु उदासीन सहायक होता है।

अधर्मद्रव्य—धर्म द्रव्य से उलटा काम करता है अर्थात् जीव पुद्गल को ठहरने में सहायक होता है; जैसे रास्ते में जाते हुये मुसाफिर को वृक्ष की छाया सहायक होती है।

आकाशद्रव्य—जोकि जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म. काल इन पांच द्रव्यों को स्थान दे।

कालद्रव्य—वह द्रव्य है जो अन्य द्रव्यों को पर्याय व दशा पलटने मे कारण रूप हो। यह दो प्रकार का है १ व्यवहार-काल—समय घड़ी घंटा आदि। निश्चयकाल-आकाश के एक एक प्रदेश मे काल का एक एक अणु जैसे रत्नो की राशि। इस द्रव्य का एक अणु दूसरे अणु मे एक मे एक होकर नही मिलता। इसी से इस द्रव्य को अकाय कहते हैं।

प्रदेश उतने स्थान को कहते हैं जितनी जगह को पुद्गल का छोटा से छोटा अविभागी (जिसका फिर भाग न हो सके) परमाणु रोकता है। इस १प्रदेश वाले आकाश में धर्म द्रव्य और अधर्म-द्रव्य का एक प्रदेश और काल की एक अणु और पुद्गल के वहुत से परमाणु आ सक्ते है, इसी प्रकार जीव के शरीर मे छोटे से छोटे में वहुत से अन्य शरीर धारी जीव आ सकते है। इसी से जीव पुद्गल अनन्त हैं किन्तु धर्म, अधर्म, आकाश, काल एक एक द्रव्य हैं—जैसे १ दीपक

के लोग मुश्किल से १ ग्लास लैम्प की चिमनी बना सकते थे। अब कि ३ वर्ष बाद सन १९०२ में देखा गया तो वे ६००० टन वाले जहाज़ अपने डौक यारों में तय्यार कर रहे हैं। पस भाइयो ! प्रमाद को छोड़ कर अपना सर्वस्व ज्ञान की उन्नति में खर्च कीजिए, तभी आप ज्ञानावरणी कर्म के संयोग से दूर रहेंगे। अन्यथा यह कर्म बँध कर आपकी आत्मा को निगोद आदि एकेन्द्री पर्याय में ले जाकर अज्ञानी की भांति ही असमर्थ कर देंगे ॥

अध्याय छठा ।

२—दर्शनावरणी कर्म

यह वह कर्म है कि जिसके सम्बन्ध से आत्मा की दर्शन शक्ति प्रकट नहीं होती तथा कम प्रकट होती है। यह नव प्रकार का होता है—

(१) चक्षु दर्शनावरणी—वह कर्म है जिसके उदय से यह प्राणी अंधा होता व कम दृष्टिवाला होता है ।

(२) अचक्षु दर्शनावरणी—वह है जिसके द्वारा आंख को छोड़कर और चार इंद्री जैसे नाक कान मुंह स्पर्श इनके द्वारा मालूम करना न हो ।

(३) अवधि दर्शनावरणी-अवधि दर्शन को न होने दे। अवधि दर्शन वह दृष्टि है कि जिसके द्वारा यह जीव अपने द्रव्य क्षेत्र काल भाव की मर्यादा लिये रूपी पदार्थों को देखे। जैसे कुछ भव पहिले की बाते अपनी तथा औरो की देखकर कहना ।

इस प्रकार अजीव पांच प्रकार के होते हैं जिन में चेतना न होने पर भी अपने अपने स्वभाव रूप कार्य करने की शक्ति होती है (इनका विशेष वर्णन जानने के लिये हमें जैन शास्त्रों के तो द्रव्यानुयोग के ग्रंथ और यूरुप के विद्वानों द्वारा प्रकाशित पदार्थ विद्या के ग्रंथ पढ़ने चाहिये) ।

अध्याय चौदहवां

आश्रव तत्व ।

पुद्गल के कार्माण परमाणुओं का हमारी आत्मा के प्रदेशों के पास पास आने को आश्रव कहते है। कर्मों के आने के ३ मार्ग हैं। मन, वचन, काय, इनको योग कहते हैं। जब यह हिलते हैं कार्माण परमाणुओं का आना होता है यह दो प्रकार का होता है एक भाव आश्रव दूसरा द्रव्य आश्रव।

मिथ्यात्, अविरत (पांच इन्द्रिय मन के न रोकने व अदया भाव) प्रमाद (आलस्य) कषाय (क्रोध मान माया लोभ) आदि के भाव अथवा दानादि शुभ कर्म करने के भाव इत्यादि भाव जिनसे कि अशुभ व शुभ कर्म आते हैं उनको भाव आश्रव कहते है। जो कर्मरूपी पुद्गल आते हैं उनको द्रव्याश्रव कहते है। कर्म आठ प्रकार के है उनके आने के कौन कौन से भाव हैं इनका वर्णन 'अजीव तत्व' में हो चुका है॥

कर्म जो आकर आत्मा के प्रदेशों मे बंध जाते हैं उनको सांपरायिक आश्रव कहते है और जो आवें तो सही पर बन्धे नहीं उनको ईर्यापथ आश्रव कहते हैं। जब अपने परिणाम में राग-

(४) केवल दर्शनावरणी—आत्मा को तीन लोक देखने की शक्ति अर्थात् केवल दर्शन को न होने दे ।

(५) निद्रा—जिसके द्वारा नींद आवे ।

(६) निद्रा निद्रा—वह है जिसके द्वारा निद्रा बार बार आवे।

(७) प्रचलता—वह है जिसके द्वारा बैठे बैठे ऊंघाई आवें ।

(८) प्रचला प्रचला—वाही ऊंघाई बार बार आवे ।

(९) स्त्यानगृद्धि—वह है जिसके द्वारा सोता सोता उठ कुछ काम करे, फिर सो रहे और न जाने जो मैंने कुछ किया था। इस दर्शनावरणी कर्म का आश्रव होकर आत्मा के साथ बंधने में वही छः कारण हैं जो कि ज्ञानावरणी कर्म के आश्रव के कारण हैं—

१ । प्रदोष—अच्छी दृष्टि व इन्द्री विषय अवधि व केवल दर्शनादि—इनको दूसरों में उत्तम देखकर ईर्षा करना ।

२ । निन्हव—आप जिस पदार्थ को देखा होय उसको दूसरों से छिपाना ।

३ । मात्सर्य—दूसरा शास्त्रादिक व और वस्तु देखना चाहे उसको न दिखाना न बतलाना—ऐसा भाव रखना कि देख कर मेरी हानि करेगा ।

४ । अन्तराय—दूसरे के पदार्थ देखने में विघ्न करना ।

५ । आसादना—दूसरे को देखा हुई चीज का मना करना ।

६ । उपघात—ठीक ठीक देखा हुई चीज में व देखने की शक्ति में दोष लगाना । इसके सिवाय दूसरे के नेत्र उपाड़ना, पर की इन्द्रियों को बिगाड़ना चाहना । अपना दृष्टि का गर्व करना, दिन में सोवना तथा आलस्य रूप रहना, सम्यक दृष्टि

क्षणभंगुरता देखता हुआ वह आत्मा समपरिमाण रक्खेगा अर्थात् किसी प्रकार की हलन चलन इस वार्ता के होने से उसके परिणामों में न होगी तो वह आत्मा कर्मों का बंधन नही करेगा।

१४८ प्रकार के जो मुख्य भेद आठ कर्मों के दिखलाए गए हैं इसी बंध के द्वारा होते हैं--जिस जिस प्रकार का कर्म यह बांधता है उस उस प्रकार का रस उदय होने पर पाता है। इस बात के अनेक दृष्टान्त जैन शास्त्रों में मिलेंगे। श्री रामचन्द्र के भाई भरत जी के पूर्वभव के चरित्र मे एक मुनि का वर्णन है कि उसने एक ऐसे उद्यान में विहार किया जहां कि चारण रिद्धिधारी आचार्य्य ने चौमासा किया था और जिस समय यह मुनि वहां पहुंचा वह विहार कर गए थे। उस उद्यान के निकटवर्ती नगर के लोग उसी दिन आचार्य के दर्शन करने के लिये आए और इन्ही को आचार्य्य मान नमस्कार किया व धर्म सुना। तव इस मुनि ने उन लोगों को यह न वतलाया कि मैं वह आचार्य नही हूं जिसका नाम आप लेते हो। इतनी माया रखने के कारण उसी मुनि को तिर्यञ्च गति मे तिलोकमडन हाथी की पर्याय में आना पड़ा।

जगत के जीवों के तरह तरह के चरित्र दिखलाई पड़ते हैं कारण यही कि उनके पहले के बांधे हुए कर्मों का उदय है।

को दूषण लगावना, कुतीर्थ की प्रशंसा करनी।' प्राणीन का घात करना तथा यतीश्वरों को देख ग्लानि करनी इत्यादि दर्शनावरणी कर्म के आश्रव के कारण हैं। इन कारणों को बचाने के लिये हमे अपने मन वचन काय पर काबू रखना चाहिये क्योंकि जिस समय इनमे से कोई चलता है कार्माण पुद्गल उसी समय उसके भाव (Thought) के प्रेरे उसके पास आते हैं और पुराने कर्मरूपी रज पर आकर जम जाते हैं।

प्यारे भाइयो! ऐसा जानकर कि आलस्य और प्रमाद हमारे दर्शनावरणी कर्म के आश्रव के कारण हैं, हमें इसे दूर कर अपने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थों की परिपूर्णता में कटिबद्ध होना चाहिये। यदि हमारे वर्तमान जैन जाति के शास्त्र के मर्मी इस दर्शनावरणी कर्म के आश्रव के कारणो को छोड़ कर निरालसी हो पदार्थों का भेद मालूम करें और पुरुषार्थ की ओर ध्यान करें तो थोड़े ही दिनों में हमारी इस जैन जाति का सुधार हो जाय। खेद इस बात का है कि हमारे भाई अपने महान् आचार्यों के सदुपदेशो पर गौर ही नहीं करते॥

अध्याय सातवां।

३—वेदनी कर्म

यह वह कर्म है जिसके उदय होने से प्राणियों को ऐसी चीजों का मिलाप होता है जिनके सबब से संसार मे मोह करनेवाला प्राणी सुख व दुख मालूम करता है, परन्तु

(ङ) देख कर मल मूत्र आदि डालना।

(३) धर्म—निम्न लिखित दश लक्षण वाले धर्म पर चलना—

(क) उत्तम क्षमा—क्रोध को वश में करके निर्बल का भी अपराध विचार पूर्वक क्षमा करना।

(ख) मार्दव—घमंड किसी बात का न करके अपने भाव यह समझ कर कोमल रखने कि आत्मा तो सबही की निश्चय से एक रूप है छोटा बड़ापन केवल शरीर सम्बन्धी है। सो इसके छूटने का कोई समय नियत नहीं, यह शरीर नाश होने ही वाला है। इस से संसार की चीज़ों को लेकर मेरा मद करना व्यर्थ तथा हानिकारक है।

(ग) आर्जव—किसी प्रकार की मायाचारी न करके परिणाम सरल रखना।

(घ) सत्य—स्वपरहितकारी सच्चे वचन कहना।

(ङ) सौच—मन वचन कार्य की पवित्रता (सफाई)

(च) सयम—इन्द्रियों को वश में रखना। जीव दया पालनी।

(छ) तप-मन को एक ठिकाने करके आत्मा की शक्ति प्रगट करने में यत्न करना।

(ज) त्याग—दान देना व परिग्रह न रखना।

(झ) आकिंचन—परिग्रह की ममता बिलकुल न होना।

(ञ) ब्रह्मचर्य्य—स्त्री मात्र से चित्त हटाकर अपना ब्रह्म जो आत्मा उसके बीच मे उसको स्थिर करना।

जिसके मोह गल जाता है उसको वेदना कर्म का उदय सुख व दुख अनुभव व विचार नहीं करा सकता है। यह वेदनी कर्म दो तरह का होता है—

१—साता वेदनी।

२—असाता वेदनी॥

साता वेदनी कर्म का जब उदय होता है तब देव गति में सुन्दर शरीर, सुन्दर देवांगना, अनेक ऋद्धियां, अनेक देव चाकर आदि चीजों का मिलाप होने से सुख होता है और मनुष्य गति में राज्यादि विभव (दौलत), निरोग शरीर, अनेक चाकर सुन्दर स्त्री, अनेक मन मोहने महल आदि चीजों का संयोग होकर सुख होता है, तिर्यंच (पशु) गति में यदि घोड़े, गौ कुत्ते आदि की योनि में गए तो राजा महाराजा व धन वानों के यहां रहना हुआ कि जहां कई नौकर उनकी हर वक्त सेवा किया करें व मालिक भी खुश होकर प्यार किया करें। इसी तरह समझ लेना चाहिये कि जो चीजें ऐसी हों कि जिनके मिलने से मोही जीव सुख मालूम करते हैं, वे सब चीजें साता वेदनी कर्म के उदय से सुख देती मालूम होती हैं।

असाता वेदनी कर्म के उदय से यह प्राणी नरकों में जा कर अनेक प्रकार के दुख की चीजों का मिलाप पाता है। जमीन बदबूदार, दरख्त के पत्ते कटीले, महारोगी कुरूप शरीर इत्यादि खोटी खोटी बातों की प्राप्ति कर दुख सहने से तकलीफ होती है। पशुगति में भूख प्यास के दुख, बलवान से डरने के दुख, गरमी सरदी के दुख, मनुष्य व अपने साथी जानवरों से मारे जाने के दुख, छोटे छोटे जानवरों के दुख

(ङ) देख कर मल मूत्र आदि डालना।

(३) धर्म—निम्न लिखित दश लक्षण वाले धर्म पर चलना—

(क) उत्तम क्षमा—क्रोध को वश में करके निर्बल का भी अपराध विचार पूर्वक क्षमा करना।

(ख) मार्दव—घमंड किसी बात का न करके अपने भाव यह समझ कर कोमल रखने कि आत्मा तो सबही की निश्चय से एक रूप है छोटा बड़ापन केवल शरीर सम्बन्धी है। सो इसके छूटने का कोई समय नियत नहीं, यह शरीर नाश होने ही वाला है। इस से संसार की चीज़ों को लेकर मेरा मद करना व्यर्थ तथा हानिकारक है।

(ग) आर्जव—किसी प्रकार की मायाचारी न करके परिणाम सरल रखना।

(घ) सत्य—स्वपरहितकारी सच्चे वचन कहना।

(ङ) सौच—मन बचन कार्य की पवित्रता (सफाई)

(च) संयम—इन्द्रियों को वश मे रखना। जीव दया पालनी।

(छ) तप-मन को एक ठिकाने करके आत्मा की शक्ति प्रगट करने में यत्न करना।

(ज) त्याग—दान देना व परिग्रह न रखना।

(झ) आकिंचन—परिग्रह की ममता बिलकुल न होना।

(ञ) ब्रह्मचर्य्य—स्त्री मात्र से चित्त हटाकर अपना ब्रह्म जो आत्मा उसके बीच में उसको स्थिर करना।

की कोई हदही नहीं: पानी बरसा, कुम्हला कर मर गए: ज्यादा धूप पड़ा, धूप की तेजी में मर गए; ओले पत्थर गिरे, झुंड के झुंड स्वाहा हो गये; आदमियों व जानवरों के पैरों के तले कुचल गए, थोड़ी देर तक तडफड़ा तडफड़ा कर मरे। ऐसे अनेक दुखदायक चीज़ों का मिलाप होता है। हमारे नेचर के तमाशा देखने वालो ने (Naturalist) इस बात को अच्छी तरह गौर किया होगा॥

इसी तरह मनुष्य गति में दरिद्री, रोगी, धनहीन होना, खोटी स्त्री, खोटे भाई, खोटे पुत्र का संयोग होना इष्ट वियोग (जिससे हम प्रीति करते हैं उस चेतन व अचेतन चीज़ का यकायक बिछुड जाना), अनिष्ट संयोग (जिस चेतन व अचेतन चीज़ का मिलाप हम नहीं चाहते हैं उसी ही चीज़ का संयोग होना) के दुख भुगतना इत्यादि दुखदायक चीजों का मिलाप होने से दुख होता है। देवगति में नीच जाति के देव होकर बड़े देवों की चाकरी करना, उनके लिये सवारी का काम देना, देवांगना (जिनकी उमर थोडी होती है) वियोग के दुख भुगतना इत्यादि दुख की प्राप्ति होती है।

वेदनी कर्म का आत्मा के प्रदेशों के पास आगमन कैसे भावों से व किस ओर अपना मन वचन काय रखने से होता है?

इस प्रश्न का उत्तर इस भांति जानना—

असाता वेदनी कर्म के आश्रव की कारणभूत इतनी बातें है—(१) दुख, (२) शोक, (३) ताप, (४) आक्रंदन, (५) वध, (६) परिवेदन॥

(७) आश्रव—कर्मों के आने के कारणों का विचार करना।

(८) संवर—कर्मों को आने से रोकने के लिये उपाय विचारना।

(९) निर्जरा—कर्मों को नाश करने का यत्न विचारना।

(१०) लोक—छः द्रव्यों से भरे लोक का स्वरूप विचार करना।

(११) बोध दुर्लभ—जगत में आत्मज्ञान का पाना बड़ा कठिन है—यदि ऐसा ज्ञान हो जाय फिर अपना समय व्यर्थ न खोना।

(१२) धर्म—जीव दया जिसमें प्रधान है वही धर्म है—यह धर्म आत्मा ही का स्वभाव है सो किसी प्रकार भी त्यागने योग्य नहीं है।

(५) परीसहों को सम परिणामों से सहना—

ये परीसह २२ हैं—१ क्षुधा (भूख) २ तृषा (प्यास) ३ शीत (जाड़ा) ४ (गरमी) ५ दंशमशक (डंस मच्छरकी) ६ नग्न (नंगे उघाड़ा रहने की) ७ अरति (नसुहाने लायक चीजों के सम्बन्ध की) ८ स्त्री (स्त्री की ओर परिणाम हो जाने की) ९ चर्या (चलने की) १० निषद्या (बैठने की) ११ शैया (सोने की) १२ आक्रोश—(गाली सुनने की) १३ वध (मारने की) १४ याचना (मांगने की) १५ अलाभ भोजनादि न मिलना की) १६ रोग १७ तृणस्पर्श (कटीले तिनके आदि के छूने की १८ मल (शरीर के मलादिक की)

(१) दुःख—दूसरे को दुःख देने के परिणाम या अपने ही को किसी रंज के सबब दुःख देने के भाव तथा आप भी दुःखी होकर दूसरे को दुःखी करना सो दुःख है।

(२) शोक—जिस चेतन व अचेतन चीज में अपने को साता मालूम होती थी उसका विछुड जाना, इस सबब से अपने परिणामों को मैला करना यानि रंज करना दूसरे को शोकित करना व आप और पर दोनों शोकित हो जाना सो शोक है।

(३) ताप—किसी सबब से अपनी बदनामी होनी होय इस कारण परिणाम मैल करके मन में पछताना है (यदि कोई अशुभ कार्य अपने से हो गया होय उसके फिर न करने के भाव करके जो पछताना उसका नाम ताप नहीं है)। दूसरे को ताप करना व आप और दूसरे दोनों संताप में मगन होना सो ताप है।

(४) आक्रंदन—तबियत में रंज की तेजी के सबब रोना, रुलाना व दोनों रोने लगना सो आक्रंदन है।

(५) वध—अपने व किसी और के आयुबल इन्द्रिय श्वासोच्छ्‌वास आदि प्राणों का वियोग करना याने मार डालना या आप और पर दोनों मर जाना सो वध है।

(६) परिदेवन—ऐसा रोना कि जिसको सुनकर लोगों के दिलों में दया (रहम) आ जावे। तथा दूसरे को ऐसा रुलाना व आप और पर दोनों इसी तरह रोने लगना सो परिदेवन है।

यह तप १२ प्रकार का होता है–६ बाह्य ६ अंतरङ्ग।

बाहरी तप उसको कहते हैं जिस के ग्रहण करने से अन्दर का तप सिद्ध हो सक्ता है। यह छः प्रकार होता है।

१ अनशन–चार प्रकार का आहार छोड़ कर निर्जलव्रत को एकादि दिन का प्रमाण लेकर करना–इसी को उपवास कहते हैं समय समय पर इस तप के करने से इन्द्रियों का का स्वेच्छाचारीपना मिटता है तथा संसार देह भोगों से राग कम होता जाता है।

२ अवमौदर्य—जितनी भूख हो उससे इतना कम खाना कि जिससे नींद आलस्य न आ जावे तथा रोग न पैदा हो जावै इसके धारण करने से हम अपने से आलस्य को दूर रक्खेंगे।

३ वृत परिसंख्यान—आशा तृष्णा मिटाने के वास्ते यह नियम करना कि आज हम एक व दो व पांच घर तक जांयगे भिक्षा मिलेगी तो लेंगे ज्यादा न जांयगे। तथा मिट्टी के व चांदी के व पीतल के बर्तनों में भोजन मिलेगा तो लेयगे अन्यथा नहीं। अथवा राजा के यहां चने का भोजन मिलेगा तो लेंगे नहीं तो नहीं—इस प्रकार दिल की कमजोरी को टालने के मतलब से अटपटी आखरी का लेना। परन्तु किसी को प्रकाश न करना सो वृतपरिसंख्यान तप है।

४ रस परित्याग—जिह्वा इन्द्री की लंपटता के मिटाने के मतलब से तथा नींद को जीतने की गरज से, तथा स्वाध्याय में चित्त रखने के प्रयोजन से इन छः रसों को समय समय पर छोड़ते रहना सो रस परित्याग नामा तप है—घी, दूध, दही, मीठा, नोन, तेल, यह छः रस है—

य छः बातें आप करे व दूसरे को करे व किसी की ऐसी दशा देखकर खुश होय व इन्हीं को मन बचन और काय से करे यह सब भाव व क्रियाएं असाता वेदनी कर्म के आश्रव के कारण होती हैं। इसके सिवाय दूसरे की बद-नामी करना, चुगली खाना, कठोर परिणाम होना, दूसरे के कषाय भाव से अंग उपंग छेद डालना, डर दिखलाना, कषाय भाव से अपनी तारीफ़ करना, दूसरे की बुराई करना, दूसरों के परिणाम दुखा देना आरंभ व परिग्रह में बड़ा ममत्व रखना, विश्वासघात (फ़रेब) करना. स्वभाव टेढ़ा रखना जीवों को बेमतलब दंड देना, विष पीना, या दूसरे को ज़हर पिलाना इत्यादिक जो जो पाप से मिले भाव हैं वह असाता वेदनी के आश्रव के कारण है। जैसे जैसे भाव में विकार होते हैं वैसे ही कार्माण जाति के पुद्गल आकर आत्मा के पुराने कर्मों के साथ में मिल जाते हैं और कालान्तर में फल देते हैं। इसी प्रकार साता वेदनीय के आश्रव के कारण यह हैं—

(१) भूत और वृती पर अनुकम्पा.—याने भूत कहिये सामान्य प्राणी [Common human beings] और वृत्ती कहिये वृत के धारी श्रावकादि पर पीड़ा देख कर ऐसे परिणाम होना मानों यह दुख हमही को हो रहे हैं और अपनी शक्ति भर देख दूर करने का यत्न करना।

[२] दान—दूसरे जीवों के भले के लिये अपना धन आदिक देना सो दान है। सो यह दान ४ प्रकार का है, औषध दान—दवाई का दान, आहार दान—भोजन का दान, अभय दान—जिसका कोई रक्षक न होय उसको रक्षा का दान, विद्या दान—याने इल्म हुनर का दान।

(ग) चारित्र विनय—श्रावक मुनि के करने योग्य आचरण बड़ी प्रीति से करना तथा सम्यग्चारित्र के पालने वालों का यथा योग्य आदर करना ।

(घ) उपचार विनय—शास्त्र को आते देख कर खड़ा हो जाना दंडवत करना, आचार्यादिक के पीछे चलना, कायदे से बैठना, हाथ जोड़ना आदि व्यवहार-विनय को उपचार विनय कहते हैं ।

३ वैयावृत्य—अपने शरीर से तथा भोजनादि व पुस्तकादि दान कर व उपदेश देकर धर्मात्मा मुनि तथा श्रावकों की सेवा करनी सो वैयावृत्य नामा तप है ।

४ स्वाध्याय—आलस्य को छोड़ कर ज्ञान की भावना करना सो स्वाध्याय है यह पांच प्रकार का होता है ।

क—वांचना—स्वयं शास्त्र को पढ़ना ।

ख—प्रेछना—पढ़ते हुए जहां न समझे उसको अपने से विशेष जानकार से पूछना ।

ग—अनुप्रेक्षा—जो कुछ पढ़ा व पूछा उसको वार वार विचार करना ।

घ—आम्नाय—जो विचार करके निर्णय किया होय उसको अन्य आचार्य तथा विद्वानों के कथन से मिलान करना ।

ङ—धर्मोपदेश—अन्य जीवों को जो तत्वों के मतलब आप समझ रक्खे हैं सो समझाना ।

५—व्युत्सर्ग—देह तथा देह के सम्बन्ध को अपना न मानना । इसी लिये बाहरी धनादि परिग्रह तथा अंतरंग

(३) सरागसंयम—धर्म की प्रीति के सबब सयम रखना याने अपने इन्द्रिय और मन को रोकना और इसी लिये कुछ बिलकुल छोडनेवाली चीजों को छोडना व कुछ का प्रमाण याने गिनती करके रखना—या श्रावक के १२ व्रत पालना व अज्ञान तप करना व अकाम निर्जरा के भाव होना। अकाम निर्जरा इस कहते हैं कि कर्मों का उदय होकर झडना, उस समय किसी बात की कामना याने इच्छा का न होना।

(४) योग—मन वचन काय योगों का शुभ रहना याने मन में अच्छे भाव वचन हित मित व काय का अच्छे कामों में लगाना।

(५) क्षांति—क्षमाभाव का होना, याने क्रोध अर्थात् गुस्से को न होने देना।

(६) शौच -लोभ के भावों का चित्त में न होना।

यह मुख्य करके छः बातें साता वेदनी कर्म के आश्रव के कारण हैं। इनके सिवाय अरहन्त की पूजा में भाव व धारना, वृद्ध (बुड्ढ) तपस्वी, व अनाथ विधवाओं की रक्षा में उद्यमी [मुस्तैद] रहना, सरल परिणाम याने साफ परिणाम रखना, विनय रूप रहना, मान याने घमंड का न करना इत्यादि मन अच्छे भाव व अच्छे वचन व अच्छा (शुभ) काय रखना—यह सब साता वेदनीय कर्म के आश्रव के कारण हैं।

प्यारे जरा भाइयो! जब वेदनी कर्म जब तक दूर न हो तब तक कभी दुःख कभी सुख की सामग्री प्राप्त होती रहती

हुआ। जो इस आनन्द दायनी विद्या को वश में करलेते हैं उनको न भूख है न प्यास है न रोग है न किसी वस्तु की आशा है। वे सदा ही मस्त रह कर सुख उड़ाते हैं। संसार की जलती हुई तृष्णा की लपकों से उनके आंचल बिलकुल दूर रह जाते हैं। यह वह रत्न है जिसका धनी ईश्वरत्व की पदवी से किसी प्रकार कम नहीं, यह वह मन्त्र है जिसका कर्त्ता जगन्मोहनी के जेता से तुल्यता करने में असमर्थ नहीं यह वह अग्नि है जिसकी शीघ्र लपक कर्म कष्टों के भस्म करने में अपनी अनुपमता से किंचित् भी दूर नहीं। पाठको ! इस निरुपम ध्यान के विषय का मनन करना परमावश्यक है—जैन मत का दारमदार इसी ही की थिरता पर स्थिर है। जो जो सुगम ग्रन्थ मेरे देखने में आए हैं उनमें श्री ज्ञानार्णव जी की महिमा अगाधही विदित हुई है। श्रीमान् परमोपयोगी श्री शुभचन्द्राचार्य विरचित यह ग्रन्थ है। श्री शुभचन्द्राचार्य ने यह ग्रंथ अपने लघुभ्राता भरथरी के समझाने के हेतु रचा था—राजा भोज जिनके समय में कालिदास व प्रसिद्ध आचार्य श्रीमान् तुंग व धनजय जी हुए हैं इन्हीं के छोटे भाई थे-इन का जीवन चरित श्री भक्तामरचारित्र में भले प्रकार दिया हुआ है।

इस ग्रन्थ में ध्यान का विषय जैसा उत्तम वर्णन किया गया है मुझे विश्वास है मेरे ऐसे अल्प ज्ञानियों के देखने में कम आया होगा—मैं यहां उसी की कुछ छाया लेकर अपने बिचारवान पाठकों के हेतु किंचित् वर्णन करूंगा—

है जिनमें कि मोही मन लीन होकर अपने आत्मस्वरूप को नहीं पहचानता।

परन्तु निज आत्मस्वरूप का पहिचानना दूर रहे, हम कभी इस बात का विचार तक नहीं करते हैं कि साता वेदनी व असाता वेदनी का आश्रव किन किन बातों से होता है। इसी हमारे विचार के न होने ही के कारण हम बाल्य विवाह करते शंका नहीं करते, हम वृद्ध विवाह करते डरते नहीं, हम बालकों को विद्वान करने की परवाह नहीं करते, हम अपनी जाति के भाइयों को दिन पर दिन अवनत दशा में प्राप्त होते हुए भी उन फिजूल खर्ची आदिक कारणों को नहीं रोकते। क्या कहें, यदि कोई विद्वान मंडली इन जैन धर्म के सम्यक उपदेशों को चित में धारण करे तो उस मंडली को कैसे सुख और शांतता की प्राप्ति हो सो कुछ शुमार में नहीं आ सकता।

अध्याय आठवां।

मोहनी कर्म।

यह वह कर्म है जिसके कारण यह जीव अपने से जुदी चीजों में ऐसा लुभा जाता है कि अपने आपको भूल जाता है। जैसे मदिरा (शराब] का नशा चढ़ता है, वैसेही मोह का नशा होता है। इस कर्म के खास खास भेद दो हैं—(१) दर्शन मोहनी, (२) चारित्र मोहनी।

आर्त कह्यो दुःख मगनता, दोऊ तज निज जानि।

भावार्थ—पापों में खुशी मानने के भाव होना सो रौद्र ध्यान है इस विचार के होने के मुख्य ४ कारण हैं [१] हिंसानन्द-अपने मन से, वचन से व काय से दूसरों को स्वयं प्राण पीड़ा करना, व प्राण पीड़ा कराना व प्राण पीड़ा व कोई हानि किसी की सुनके हर्ष मानना [२] मृषानन्द झूठ बोल के, बुलाके, व बोला हुआ सुनके खुशी मानना [३] चौर्यानन्द—चोरी करके कराके व करी हुई सुनके खुशी मानना [४] परिग्रहानन्द— संसारिक सामग्री बढ़ा के बढ़वा के, व बढ़ी हुई देख सुनके आनन्द मानना।

इन आर्त रौद्र ध्यानों के करने से किसी जीव का कुछ भी भला नहीं होता बल्कि दुहरी हानि होती है। एक तो इस भव में दुःख होता है दूसरे वह प्राणी ऐसे अशुभ कार्माण परमाणुओं को खींच लेता है जिनका फल अन्यभव में भुगतना होता है। इस लिये जो कर्मों के संवर व निर्जरा करने वाले ध्यान को करना चाहते हैं उनको यह दोनों ध्यान त्यागने योग्य हैं। ध्यान करने वाले को दो अच्छे ध्यानों का विचार करना चाहिये। १ धर्म ध्यान २ शुक्ल ध्यान। शुक्लध्यान के होने लायक भाव इस काल में हमारे नहीं हो सकते हैं। इस कारण इसका वर्णन यहां बिलकुल न कर केवल धर्मध्यान का वर्णन हम करेंगे।

अध्याय १९ वां

धर्म ध्यान।

ध्यान में चार मुख्य बातों को जानना चाहिये १ ध्याता

दर्शन मोहनी हमारे विश्वास [अकीदे] को मद की दशा में रखती, याने जिसके कारण हमारा विश्वास ठीक नहीं होता।

चारित्र मोहनी के कारण हमारा आचरण मतवारे का ऐसा होता है, याने उचित व्यवहार अपने मन वचन काय का नहीं होता।

दर्शन मोहनी ३ प्रकार है—

(१) मिथ्यात्व, (२) सम्यक् मिथ्यात्व, (३) सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व।

(१) मिथ्यात्व, जिसके उदय मे तत्वार्थ का श्रद्धान न हो, याने जीव अजीव वगैरह तत्वों के जो असली मतलब हैं उस पर यकीन न हो। इसी तरह इन तत्वों के स्वरूप को बतलाने वाले देव, गुरु शास्त्र का भी ठीक विश्वास न हो, रागी द्वेषी देवों को देव माने, रागी द्वेषी परिग्रहधारी गुरुओं को गुरु माने, हिंसा के पुष्ट करनेवाले व संसार मे प्रीति बढ़ानेवाले शास्त्रों को शास्त्र माने, आदि मिथ्यात्व है।

(२) सम्यक् मिथ्यात्व—जीव अजीव आदि तत्वों का व देव गुरु शास्त्र का कुछ तो श्रद्धान होय और कुछ न होय, याने सम्यक और मिथ्यात्व मिले हुए होंय। जैसे दही और गुड का मिला हुआ स्वाद होता है।

(३) सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व—जिसके उदय से सम्यक बिगड़े तो नहीं परन्तु श्रद्धान में मैलापन रहे। जैसे जीवादि

के दिन नगर वाहर बन में ध्यान लगाया था। हा! क्या स्थिर ध्यान था कि राजा की अर्द्धांगिनी द्वारा अनेक कष्ट दिये जाने तथा आपत्तियों के भीतर पटके जाने पर भी वे अपने ध्यान को नहीं छोड़ते भए।

जो मुनि मारण, उच्चाटन, वशीकरण, इंद्रजाल, वैद्यक, ज्योतिष आदि क्रियाओं के करने में परिणाम रखते हैं वे कभी धर्म ध्यान नही कर सकते हैं। यह ध्यान तो १२ भावनाओं के रस में मगन हो जाने वाले मनुष्योंही के पल्ले पड़ सकता है, अन्यों के नही।

ऐसे ध्यान के चाहने वाले को किस स्थान पर बैठ कर ध्यान करना चाहिये।

अध्याय २० वां

ध्यान का स्थान

दोहा

जहां क्षोभ मन ऊपजै, तहां ध्यान नहिं होय।
ऐसे थान विरुद्ध है ध्यानी त्यागै सोय॥

भावार्थ

जिस जगह पर बैठने से मन में कुछ भी घवड़ाहटपैदा हो वह जगह ध्यान करने के लायक नहीं है—क्योंकि स्थान के सवव से भी मन विगड़ जाता है व निश्चल हो जाता है। इस लिये ऐसी जगह वैठ कर ध्यान नही हो सकता है, जहां

तत्वों का श्रद्धान तो है परन्तु कभी कभी निश्चयनय से सर्व जीव एकही स्वरूप हैं। इस वात को भूल जाना, भेद समझने लगना, अथवा सच्चे देवादि का स्वरूप तो मालुम है परन्तु कभी कभी ऐसा भ्रम करना कि शांतनाथ जी शांति के कर्त्ता हैं, पार्श्वनाथ जी ही हमारे सुख के दाता, याने कभी कभी सर्व ही अरहंत देवों को एक सा न समझना।

चारित्र मोहनी के २५ भेद हैं। इनमें नौ नोकपाय कहलाते हैं और १६ कषाय है।

नौ भेद नोकषाय के यह है—

(१) हास्य—जिसके उदय से हास्य (मज़ाक) प्रकट हो। (२) रति—जिसके उदय से संसारी चीजों में नविचन्त लीन हो जाय। (३) अरति—जिसके उदय से कुछ सुहावे नहीं। (४) शोक—जिसके उदय से किसी इष्ट के वियोग होने से रंज करे। (५) भय—जिसके उदय से दुःखकारी चीज़ से डरे। (६) जुगुप्सा जिसके उदय से अपना दोप (ऐब) छिपावे और दूसरे के दोष देख परिणाम मैले करे याने नफरत करे। (७) स्त्री वेद—जिसके उदय से स्त्री सम्बन्धी भाव होय। (८) पुरुष वेद—जिसके उदय से पुरुष सम्बन्धी भाव होय। (९) नपुंसक वेद—जिसके उदय से नपुंसक सम्बन्धी भाव होय।

१६ कपाय यह हैं—क्रोध (गुस्सा), मान (गरूर), माया (कपट दगाबाजी), लोभ (लालच) यह चार कपाय हैं। इन चारों के चार चार भेद हैं याने अनन्तानुवन्धी क्रोध व

Jean Paul Richetr [जीनपाल रिकूर]:का कथन है-
"All worthy things are done in solitude"
अर्थात् जितने योग्य काम हैं सब एकांत स्थान में ही किये जाते हैं।

Lacordaire [लेकर डेयर] का कथन है—

"I believe solitude is as necessary to friendship as it is to sanctity, to genius as to virtue"

अर्थात्—मुझे यह विश्वास है कि विना एकान्त मे वास किये न सच्ची मित्रता आती है न मानसिक पवित्रता प्राप्त होती है, न बुद्धि मे तीव्रता और न व्यवहार की सचाई आती है। संसारिक उन्नति में भी मन की स्थिरता के लिए जब एकान्त कानन प्रिय है तब आत्मिक उन्नति कही एकान्त वास के विना आ सकती है? कदापि नहीं। इसी लिये जो कर्म को निर्जराकारक ध्यान धरा चाहते हे वे गृहस्थी के वास को छोड़कर मोह सर्व वस्तुओ का हटाकर अपने आपही के ध्यान में मह्रो हो जाने के लिये ऐसी जगह पर जाकर विचार करते हैं जहां उनके मन को संसारिक व्यथा नहीं व्याप सकती है। गृहस्थ भी ध्यान का अभ्यास करते है इस लिये उनको इस अभ्यास के लिये अपने नियत समय तक ऐसी शून्य जगह पर बैठ कर मनन करना चाहिये जहां उनके चित्त को उसकाने वाला कोई पदार्थ न हो। स्थान ठीक करने के बाद ध्यानी को अपना आसन भी ठीक रखना चाहिये।

मान व माया व लोभ, अप्रत्याख्यानावरणी क्रोध व मान व माया व लोभ, प्रत्याख्यानावरणी व मान व माया व लोभ संज्वलन क्रोध व मान व माया व लोभ। इस प्रकार १६ भेद हैं।

अनन्तानुबन्धी— यह है जिनके उदय से अनन्त संसार का बंध हो, याने ऐसा गुस्सा व गरूर वगरह होना कि जो तबियत से कभी दूर न हो।

अप्रत्याख्यानावरणी - यह है जिनके उदय से ऐसा गुस्सा, गरूर, लालच व मायाचार होना कि जिससे गृहस्थी के करने के लायक श्रावक के १२ व्रत पालन के भाव नहीं हों।

प्रत्याख्यानावरणी—यह है जिनके उदय से ऐसा क्रोधादि होना कि मुनियों के व्रत को नहीं पाल सके।

संज्वलन—यह है जिनके उदय से ऐसा क्रोधादि होना कि अपने पूर्ण शुद्ध स्वभाव में बराबर लीन न रह सके।

यह २५ भेद चारित्रमोहनी के और ३ भेद दर्शन मोहनी के मिला कर कुल २८ भेद मोहनी कर्म के हैं।

अब यह मोहनी कर्म किन किन बातों से आश्रव रूप होता है इसका विचार करना चाहिये।

भाइयो! दर्शनमोहनी कर्म के कारण यह हैं—(१) केवली (जो ४ घातिया कर्मों को नाश कर केवल ज्ञान हासिल करके तीनलोक व अलोक को जान कर निराकुल हो गए) की निन्दा करनी या झूठा दोष लगाना। (२) और शास्त्र (जो कि

दोहा

आसन दृढ़ते ध्यान में, मनलागे इकतान।
ताते आसन योग्यकूं, मुनि करि धारैं ध्यान॥
(आ० अ० २८)

भावार्थ—जिस आसन के रखने से मुनि का मन निज स्वरूप में लगे उसी आसन को रखकर मुनि आत्मध्मान करते हैं।

अध्याय २२ वां

प्राणायाम।

ध्यान करने वाले के लिये यह बहुत जरूरी बात है कि उसका मन थिर हो—क्योंकि बिना मनके स्थिर किए हम कदापि आत्मध्यान नहीं कर सकते हैं। यदि ध्याता ने अपने ज्ञान वैराग्य तथा इन्द्रियों के रोकने से मन को सहजही में वश कर लिया है तो उसके लिये प्राणायाम की ज़रूरत नहा है—किन्तु जिस ध्याता का मन चंचल है अर्थात् ध्यान करते वक्त वश में भलेप्रकार न रहकर विषय कषाय सम्बन्धी तरह तरह के विकल्प भावों के अन्दर जाता है उसके लिये ध्यान शुरूकरने के पहिले प्राणायाम का साधन बहुत जरूरी है।

इस प्राणायाम के साधन से लौकिक प्रयोजन भी सिद्ध होते हैं—किन्तु मोक्ष मार्गपर चलने वाले को लौकिक मतलब से कभी प्राणायाम करना उचित नहीं है—क्योकि लौकिक प्रयोजन संसारिक रागद्वेष के करने वाले हैं—दूसरे के हानि लाभ को बतलाना, वशीकरण, मारण उच्चाटन, आदि करना

दयामयी उपदेश से भरा है) की निन्दा करना यानी झूठा दोष लगाना। (३) संघ (मुनियों के संघ) की निन्दा करना व झूठा दोष लगाना। (४) देव (भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी, कल्प-वासी) की निन्दा करना व झूठा दोष लगाना याने कहना कि मांसभक्षी हैं। (५) धर्म (दयामयी धर्म) की निन्दा करना व झूठा दोष लगाना।

इन ५ बातों की तरफ मन वच काय चलने से तथा अन्य पदार्थों के सच्चे स्वरूप को मिथ्या कहने और मानने से दर्शन मोहनी कर्म का आश्रव होता है।

कषाय [क्रोध, मान, माया, लोभ] के होने से जो परिणाम में तेजी होना और इसी कारण वचन भी तेज निकालना व शरीर से भी खोटे आचरण करना, इनसे चारित्र मोहनी के कषाय वेदनी कर्म का आश्रव होता है। इसी तरह नोकषाय वेदनी का आश्रव इस भांति है कि दीन दुःखी की हँसी करने व बेमतलब बकने से हास्य का (१) योग्य काम को मना नहीं करने व दूसरे की पीड़ा को दूर करने इत्यादि से रति का (२), खोटी क्रिया में उत्साह, दूसरे को पीड़ा देने, व पापी की संगति करने से अरति का (३), आप रंज में रहने तथा दूसरों को रंज देने तथा दूसरे का रंज देख कर खुश होने से शोक का (४), आप भय में रहना व दूसरे को डर दिखलाना व निर्दई होकर दुःख देने से भय का (५), दूसरे की बुराई करने व अच्छे आचरणवाले से घृणा (नफरत) करने से जुगुप्सा का (६), अतिकाम—तीव्रता से

३ रेचक – इस हवा को अपने कोठे से धीरे धीरे निकास कर वाहर कर देना। जो हवा नाभि से हटा कर हृदय कमल में होती हुई तालू के छेद के स्थान पर ठहराई जाती है उसको पवन का परमेश्वर कहते हैं।

पूरक, कुंभक, रेचक का जब बराबर अभ्यास हो जाय तब योगी हृदय के कमल में हवा के साथ अपने मनको जोड़ कर थांभ देते हैं—इस तरह मनको थांभ ने से जबतक मन रुकेगा कोई और भाव पैदा न होकर विषयों की आशा मिट जायगी और भीतर ज्ञान वढ़ता हुआ चला जायगा।

मन के वश करने के लिये सिर्फ इतना अभ्यास प्राणायाम का जरूरी है। प्राणायाम के द्वारा लौकिक प्रयोजन साधने के लिये इस २८ वें अध्याय में वहुत सी युक्तिया पवन के वश करने की कही हैं उनका वर्णन मैं प्राणायाम शीर्षक लेख में किसी समय पर दिखाऊंगा—यहां "ध्यान" विषय में केवल मन के वश करने का प्रयोजन है—२८ वे अध्याय का सार टीकाकार श्रीमान् पंडित जयचंद जी ने इस एक कवित्त में दिखलाया है—

कवित्त।

आसन थान सवांरि करै मुनि प्राणायाम समीर संभार।
पूकर कुंभक रेचक साधन निज आधीन सुतत्व विचार॥
जगत रीति सम लखैं शुभाशुभ अपने हानि वृद्ध निरधार।
मन रोकै परमातम ध्यावै तव यह सफल न आन प्रकार॥

पर स्त्री का आदर तथा रागभाव करने व सेवने तथा स्त्री के स भाव अलिंगनादि के करने से स्त्री (वेदका) (७), थोडा क्रोध तथा कम लोभ, स्त्री सम्बन्ध में अल्पराग अपनी स्त्री में सन्तोष करने, ईर्षा का अभाव तथा स्नान, गन्ध, पुष्पमाला, आभरण से अनादर इत्यादि होने पुरुष वेदका (८), चारकषाय की तजा से तथा गुह्य इन्द्री के छेदन से, स्त्री पुरुष के काम के अंग छोड अन्य अंगों में व्यसनापने से, शीलव्रत व व्रता को उपसर्ग देन से, परस्त्री के संग के निमित्त तीव्र राग करन से नपुंसक वेद (९) का आश्रव होता है।

भाइयो! इस प्रकार मोहनी कर्म के भेद जान कर यह उद्यम करना चाहिये कि जिसमें हमारा मोह सांसारिक पदार्थों में विशेष न राग कर अपन जीव उद्धार की ओर लगे और हमको बहुत से बेमतलब कामों में अपना धन व मिहनत व समय बरबाद करना न हो। हम देखते हैं कि हमारे जैनी भाई भी बिलकुल जैनमत के उपदेश के विरुद्ध चलकर सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति के लिये कुदेव जैसे शीतला, देवी, भवानी, भैरों, क्षेत्रपाल आदि को मानते तथा संसार में आशक्त विषयों में प्रीतिधारक मिथ्यात्वियों को भोजन देते व ब्रह्म की ओर से विमुख केवल ब्राह्मण जाति धारी विषय लीन ब्राह्मणों को दान देने से अपना भला होना मानते है।

भाइयो! क्या कहा जाय! हमारे जैनी भाई इसी मोहनी कर्म के फंदों में ऐसे उलझे हुए हैं, झूठ बोलने से डरते नहीं, दूसरे का माल हजम करने में शंका करते नहीं, देव द्रव्य के गटक जाने में कुछ पाप समझते नहीं, बालकों को

भावार्थ—मन ठहराने के १० स्थान यह हैं १ दोनों आखें २ दोनों कान ३ नाक की नोक ४ माथा ५ मुंह ६ नाभी ७ सिर ८ हृदय [दिल] ९ तालू १० दोनो भौंहों के बीच का भाग॥ इन में से किसी जगह मनको रोक कर ध्येय (परमात्मा) का बिचार करना है सो प्रत्याहार धारणा है।

ध्याता आसन, स्थान, प्रत्याहार धारणा को ठीक करने के पीछे इस बात की प्रतिज्ञा अपने चित्त में करता है कि मैं अनादि काल से कर्मरूपी जाल से बँधा हूं, इसी से संसार में नाना प्रकार के दुःख अविद्या के कारण पाए—मेरा स्वभाव परमात्मा के समान ज्ञाता द्रष्टा है किन्तु कर्म की रज से मैला हो रहा है। अब मैं ध्याय के बल से कर्मों को नाशकर अपने स्वरूप को ध्यान लेऊं। इस तरह मन में कह कर वह ध्यानी रागद्वेष अपने चित्त से हटा धर्म ध्यान करना प्रारम्भ करता है।

अध्याय २४ वां

ध्येय।

जिस का ध्यान किया जाय—उसको ध्येय कहते हैं यह लोक छः द्रव्यों का ढेर है। जितनी दशाएं इस जगत में दिखलाई पड़ती हैं सब छ द्रव्यों के ही सम्बन्ध से पैदा हुई है जिन में १ जीव तो चेतन ज्ञान दर्शन मई द्रव्य है बाकी पांच पुद्गल, धर्म अधर्मः आकाश और काल अचेतन याने

छोटी उमर में विवाह कर उनको मिट्टी के खिलौने समझ कर तमाशा देखने में आनन्द मानते, तथा उनको विद्या रत्न से विभूषित करने की परवा रखते नहीं, अपने समय को यमतलब चौसर सतरंज आदि में खोने से कुछ दोष मानते नहीं, अपने भाइयों को दिन पर दिन हीन दीन देख कर उनके सुधार व सुख के लिये प्रयत्न करते नहीं, जैन जाति की उद्धार करनेवाली भारत जैन महामंडल से बेपरवाह रह कर उसका सहायता देते नहीं, व्यापार की वृद्धि न्याय और सत्य से होती है उस पर ध्यान रखते नहीं। विशेष क्या कहिये, उत्तम मनुष्य कुली कहला करके भी साधारण मनुष्य भी होने की इच्छा रखते नहीं। भाइयो! मोह छोड़ो। यह महा दुःखदाई है। इसकी संगति से जीवों ने त्रास पाई है। जिन्होंने इस मोह के साथ बुराई की है उन्होंने व्यापार, धन, मान्यता, देशोपकार, जीव विचार आदि मे उन्नति पाई है।

अध्याय नवां।

५—आयुकर्म

आयुकर्म—वह कर्म है जिसके कारण यह जीव इस संसार मे नाना प्रकार की योनियो मे जा शरीर मे निवास कर भ्रमण करता हुआ कालक्षेप करता है।

इसके मुख्य ४ भेद हैं—नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव। (१) जिसके कारण नरक मे पैदा होकर नारकी के शरीर को

अर्थात् अभ्यास करते करते कुछ दिनों में ध्यान करने वाले का द्वैत भाव (मैं आत्मा किसी परमात्मा का ध्यान करता हूं) नाश हो जाता है। उसके फिर ध्याता, ध्यान और ध्येय में कुछ भेद नहीं रहता अर्थात् अद्वैत भाव (एकी भाव) में प्राप्त हो कर्मों का नाश कर डालता है।

दोहा

पौरुष कर ध्यावै मुनी, शुद्ध आतमा जोय।
कर्म रहित वर गुन सहित, तब तैसाही होय॥

(श्रा० अ० ३०)

भावार्थ—मुनि यतन करके अपनी आत्मा ही के स्वभाव में लीन होते हैं। अपनी ही आत्मा को शक्ति अपेक्षा शुद्ध कर्मों से दूर, विचारते हैं तब तैसे ही याने शुद्ध आत्मा हो जाते हैं, इस लिये ध्येय अर्थात् ध्यान करने योग्य सिवाय शुद्ध आत्मा के और कोई वस्तु नही है—इस शुद्ध आत्मा का ध्यान इस प्रकार विचार कर करना जैसे इस छप्पै में कहा है।

छप्पै

जड़ चेतन मिलि हैं अनादि के एक रूप जिम। मूढ़ भेद नहिं लपै प्रकृति मिथ्यात्व उदैइम। जिन आगम तै चिन्ह भेद जानै लहि अवसर। अनुभव करि चिद्रूप आप अर अन्य सकल पर। जब अंतर आतम होय करि करै शुद्ध उपयोग मुनि। तब शुद्ध आतमा ध्यान करि लहै मोक्ष सुख मय अवनि। (श्रा० अ० ३१)

धारण करे सो नरक आयु है। (२) एकेंद्री वृक्षादि जीव से लेकर पचेन्द्री पशु पक्षी पर्यंत जलचर, थलचर, नभचर, आदि योनियों में रहने का कारण सो तिर्यंच आयु है। (३) मनुष्य भव में रहने का कारण सो मनुष्य आयु है। (४) देव की योनि में रहने का कारण सो देव आयु है।

यह जीव अपने ही रागादि भावों के द्वारा अपने ही आत्मा पर पड़े हुए कर्म रूपी सूक्ष्म पुद्गल परमाणुओं के द्वारा अन्य सूक्ष्म परमाणुओं के आकर्षित किये जाने पर इन्हीं की शक्ति से प्रेरा हुआ स्वय कभी नारकी, कभी तिर्यंच, कभी मनुष्य कभी देव हो जाता है, अर्थात् ससार की चार विशेष गतियों में भ्रमण किया करता है।

इस आयुकर्म के जीव के साथ सम्बन्धित होने के कौन कौन से कारण हैं इनका भी जानना आवश्यक है, अब प्रथम नरक आयु रूपी कर्मों के आश्रव का कारण कहते हैं। बहुत आरम्भ करना और परिग्रह में बहुत ममत्व करना सो नरक आयु के आश्रव के कारण हैं। प्रयोजन यह कि जिन जीवों के ऐसे परिणाम रहते हैं कि हम अपने पास धन, धरती, आदि पदार्थों का खूब बढ़ावें, चाहे वह धन, धरती आदि पदार्थ अन्याय चोरी मायाचारी, झूठ आदि उपायों से प्राप्त हों, अन्य का चाहे सर्वस्व जाता रहे हमें तो लाभ हो जाय, कृष्णलेश्या के रंग के भाव जिनके होते हैं उनको अवश्य नरक गति प्राप्त होती है। जो जीवों के घात, झूठ चोरी और परिग्रह में बहुत खुश होते हैं ऐसे रौद्रध्यानी जीव नरक ही के पात्र हैं। नरकगति में पड़े हुए जीवों को कितना व किस

भावार्थ—जो अपने लखने याने जानने में आवें उसके द्वारा जो कि प्रत्यक्ष लखने में नहीं आ सकता उसको विचारे, (स्थूल) इंद्रियों के मालूम करने में जो आवे उस के द्वारा सूक्ष्म-(जो इंद्रियों के जानने में न आवे) को विचारे। इसी तरह सालंब (किसी सहारा लेने वाली चीज़) के द्वारा निरालंब (जो किसी के सहारे नहीं है) ऐसे परमात्मा को जाने-तत्व पर पहुंचने का यह मार्ग है—इसी लिये किसी साकार चिन्ह की आवश्यकता है जिस के द्वारा हम निज आत्मा व परमात्मा का ध्यान कर सकें।

धर्मध्यान साधने के मुख्य नियम।

पाठको! शुद्ध परमात्मा में लय हो जाने के लिये ४ प्रकार का आलम्बरूप मार्ग है जिस के द्वारा हमारा अभ्यास क्रम क्रम से निराकार आत्मा पर जम जाता है—

वे यह है—पिंडस्थ, २ पदस्थ, ३ रूपस्थ ४ रूपातीत।

अध्याय २७ वां

पिंडस्थ ध्यान मार्ग।

इस पिंडस्थ ध्यान में ५ प्रकार की धारणा है।

१ पार्थिवी २ आग्नेयी ३ आश्वासनी ४ वारुणी ५ तत्व-रूपवती।

पार्थिवी धारणा स्वरूप।

इस मध्यलोक के समान बड़ा एक समुद्र विचार कर जो कि क्षीर समुद्र के समान सफेद रंग का, ठहरा हुआ,

प्रकार का दुःख होता है, इनका वर्णन यहां पर न कर केवल इतना कह देनाही बस होगा कि असहाय और छोटे छोटे पशु पक्षियों को जो कुछ दुःख आप अपनी आंख के सामने देखते हैं, इससे करोड़ गुना दुख नारकियों को कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। कर्म के परमाणुओं के बल से यह आत्मा जिसका कि अपना स्वभाव ऊंचे जाने का है, नीचे को ओर आकर जन्म लेता है। जैसे आग को लौ, जिस का स्वभाव ऊंचे जाने का है, पवन के बल के कारण इधर उधर का गमन करती है।

तिर्यंच् आयु के आश्रव का कारण मायाचार करना है, अर्थात् जो जीव धर्म के उपदेशक अपने को प्रकट करके अपने ज़ाती मतलब को लिये हुए उपदेश कर दूसरों को झूठे मार्ग पर लगाकर अनर्थ कराते हैं, ऐसे जीव पशु-पर्याय पाते हैं। जो दूसरे को झूठा दोष लगा कर उसका अपमान करके अपने में नहीं होते गुणों का प्रकट कर अपना मान चाहते हैं, ऐसे कपोतलेश्या के रंग के परिणामवाले जीव पशुगति के पात्र हैं। जो जीव अपनी किसी अच्छी चेतन व अचेतन जीव के बिछुड़ने पर शोक करते हैं, व बुरी चेतन व अचेतन चीज़ के पास रहते हुए रंज किया करते हैं, व आप रोगी होकर उस रोग के कारण उपाय तो नहीं बल्कि सोच किया करते हैं, व जिन जीवों की इच्छायें यह रहती हैं कि हमे मरने के बाद खूब धन सम्पदावाली पर्याय प्राप्त हो, हम राजा महाराजा होकर खूब चैन उड़ावें, ऐसे आर्त्तध्यानी जीव पशुगति में आकर भूख,

देखे। इस हूँ की रेफ से धीरे धीरे निकलती हुई धूएँ की लौ को विचारे और फिर यह धूआँ आग के फुलिंगों की सूरत में होता हुआ लौ की दशा में बढ़ता जाय और योगी अपने हृदय के बीच में नीचा मुंह किये एक आठ पाखड़ी का कमल विचारे यह आठ पाखड़ी आठ कर्म को दिखलाने वाली जाने—और यह देखे कि वह रेफ से पैदा हुई आग इस आठ कर्म रूपी आठ पत्तों के कमल को जला रही है फिर यह देखे कि यह आग इस कमल को जलाते जलाते बाहर देह के आकर त्रिकोण (Triangle) रूप हो गई। जिस में अग्नि का बीजाक्षर रेफ फैला हुआ तथा साथिये का चिन्ह बना हुआ है और जो ऊपर की ओर सोने की चमक के माफिक चमकदार लौ को निकाले हुए बिना किसी धुएं के जल रही है इस तरह यह विचारे कि यह रेफ से निकली हुई आग अन्दर मेरे कर्मों के कमल को और बाहर इस शरीर को जला रही है और जलाते जलाते दोनों को भस्म की दशा में कर दिया है और तब यह आग अपने आप धीरे धीरे ठंढी हो बुझ गई है—इतना विचार बार बार करना सो आग्नेयी धारणा है।

आश्वासनी धारणा।

जब ऊपर कही हुई धारणा का अच्छी तरह अभ्यास हो जाय। तब वह योगी यह विचार करें कि बहुत तेज़ हवा चल रही है जिसने बादलों को फोड़ कर समुद्र के पानी को चलायमान कर, पर्वतों को कम्पाकर तमाम जगत में फैल कर खलबली पैदा कर दी है और उसी पवन ने इस

प्यास गरमी, सरदी, मार आदि की ऐसी ऐसी वेदनाएं सहते हैं कि हम उनका यदि विचार करें तो शरीर का रोंया रोंया कांप उठे। कर्मों की प्रेरणा से यह जीव स्वयं कभी वृक्ष होता है, कभी भाग, कभी चींटी, कभी हाथी कभी सिंह, कभी बकरी, गाय आदि होता है। निश्चय से अपने परिणाम ही अपने को दुखदाई हैं।

मनुष्य आयु में जाने के कारण यह है—

जो जीव थोडा आरम्भ मतलब भर करने ही से व थोडा मतलब भर परिग्रह (सामान) के धरने ही से संतोषी रहते हैं जिनके चित्त दया भाव से भाजे हुए अन्याय से डरते हैं, तथा जो दूसरे का बुरा नहीं चाहते हैं, संसार से भी जिनके बहुत प्रीति नहीं होती, दान, पूजा आदिक में जिन के भाव विशेष लवलीन होते हैं, ऐसे धर्मध्यानी जीव मनुष्य आयु को प्राप्त करते हैं और जिनके चित्त कोमल होते हैं दिल में जरा सा भी मान जिन के नहीं होता, ऐसे विचारवान प्राणी मनुष्य आयु का आश्रव करते हैं।

देव आयु के आश्रव के कारण इस भांति है—जो महाव्रती योगी की दशा को धारण कर आत्म ध्यान करते हैं व जो गृहस्थ श्रावक व्रतशील को पालते हैं और अन्त में संन्यास लेते हैं ऐसे जीव अवश्य देवगति पाते हैं। अथवा जो किसी दूसरे के भय से व लाचार हो भूख प्यास खोटे वचन व गर्मी सर्दी को बाधा सहते हैं और परिणाम जिनके कोमल होते हैं, ऐसे अकाम निर्जरावाले जीव भी छोटी जाति के देव होते हैं जो अज्ञान तप करते हैं अर्थात् आत्मा को नहीं जान

इस प्रकार पिंडस्थ ध्यान के अभ्यास किये जाने से यह आत्मा निजानन्द को पाता हुआ थोड़े ही समय में मोक्ष के अविनाशी सुख को पालेता है। इस पिंडस्थ ध्यान की महिमा अगाध है—इसके अभ्यास करने वाले को मंत्र, यंत्र, सिंह, सर्प, व और कोई उपद्रव अपना कुछ असर नहीं कर सकते हैं।

इस पिंडस्थ ध्यान की महिमा इन श्लोकों से जाननी चाहिये।

आर्याछन्द

इत्यचिरतं सयोगी
पिंडस्थे ज्ञातनिश्चलाभ्यासं।
शिवसुख मनन्यसाध्यं
प्राप्नोत्यचिरेण कालेन ॥

शार्दूलविक्रीडित

विद्यामंडलमंत्रयंत्रकुहुकू
कूराभिचाराः क्रियाः।
सिंहाशी विपदैत्य दंति सरभा
यांत्येवनिःसारतां ॥

शाकिन्यो गृहराक्षसप्रभृतयो
मुंचंत्यसद्वासनां,
एतद्ध्यानधनस्थ सन्निधिवशा
द्भानोर्यथा कौशिकाः ॥

कर व भावों की शुद्धता को न पहिचान कर शरीर को तरह तरह कष्ट देते हैं इस निश्चय से कि इसके बाद अच्छी गति होगी, ऐसे जीव भी मर कर नीच जाति के देव होते हैं। जो जीव सम्यग्दृष्टी होते अर्थात् जिनके आपा पर का अच्छी तरह ज्ञान और निश्चय होता है, ऐसे जीव स्वर्गवासी देवही होते हैं। भोगभूमि के पैदा होने वाले मनुष्य जो शील और व्रत नहीं पालते हैं अपने सरल स्वभाव के कारण देवगति में गमन करते हैं। देवगति में इन्द्रियाधीन सुख की बाहुल्यता है तो भी उस स्थान में मन सम्बन्धी अनेक दुख हैं, जैसे ईर्षा, द्वेष, अपमानादिक। भाइयो! यहां संक्षेप में चारो आयु में जीवों को रखनेवाले कर्मों के आश्रव का वर्णन किया है। विशेष जानने की इच्छा करनेवालो को श्री सर्वार्थसिद्धि जी को भले प्रकार पढना चाहिये। प्रयोजन कहने का यह है कि मनुष्य भव पाकर हमको वह कर्तव्य करने योग्य है जिनसे हमारी अवस्था दिन पर दिन उच्च होती चली जाय। क्योंकि जीवन संसार में थोड़ा है। इस थोड़ी सी आयु पाकर यदि हमने अपने आत्मा का निर्मल करने के यत्न नहीं किये अर्थात् संसार से मुक्ति पाने की चेष्टा नही की तो फिर हमारा सुधार कैसे होगा। यह मनन कदाचित जीवों की अज्ञानता में दब जाय और हम बावले की तरह कर्मरूपी नशे से प्रेरे हुये संसार वन के चारों मार्गों की अनेक गलियों में भटके रहें व इस भयानक वन से निकलने का मार्ग कभी नही पावें तो इसमे कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु यदि इस संसार वन मे धीरे धीरे सोचते विचार करते कदम रख रख कर, इस वन की मोहनी वस्तुओं से मोह न करते हुये, न

सर्व (१६+३३) ४९ अक्षरों के मंत्र का विचार करना सो पदस्थ ध्यान में वर्णमातृका का ध्यान है—

सर्व श्रुतज्ञान की उत्पत्ति इन ४९ अक्षरों से होती है इस लिये इस ध्यान के बहुत दिनों के अभ्यास से ज्ञान की बढवारी होने लगती है यहां तक कि संयमी मुनि श्रुतज्ञान के पार पहुंच जाते हैं—अतिरिक्त इस ज्ञान वृद्धि होने के इस ध्यान के अभ्यास से शरीर के रोगों की भी शान्ति होती है।

स्वामी शुभचंद्राचार्य का वाक्य है कि—

जापाज्जयेत् क्षयमरोचकमग्निमाद्य।
कुष्टोदरात्मकसनस्वसनादि रोगान्॥
प्राप्नोतिवा प्रति मवाग्महती महद्भयः।
पूजां परत्रच गतिं पुरुपोत्तमाप्तं॥

भावार्थ—इस वर्णमातृका से क्षयी अग्नि की मंदता, कुष्टोदर, कास स्वास, आदि रोग जीते हैं, अच्छी वचन शक्ति प्राप्त होती है तथा उत्तम गति को पाते हैं।

इस पदस्थ ध्यान में बहुत प्रकार के पद ध्यान करने योग्य कहे गये हैं—यहां उनमें से कुछ और वर्णन किये जाते हैं—

पद—हँ-जिससे प्रयोजन अर्हंतका है। इस मन्त्र पदको अपने हृदय के बीच एक सुवर्ण मई कमल के बीच की कर्णिका में ठहरा हुआ सफेद रंग का विचार करे फिर इसी को धीरे धीरे ऊपर को उठता हुआ देखे और यह उठकर दोनों भौहो के बीच में आकर चमके, फिर मुंहरूपी कमल में जाता हुआ तालू के छेद से अमृत मई जल को वर्षाता हुआ निकले फिर

ससार में भयदायक वस्तुओं से डरते हुए, साहस की कमर बाध सीधे मार्ग पर चल जायगे तो निस्सन्देह इस बन से निकल कर अपना घर जो मुक्ति है उसको प्राप्त करेंगे। भाइयो ! ध्यान दीजिये।

अध्याय दसवां

६—नामकर्म

नाम कर्म वह कर्म है जिसके उदय होने से तरह तरह का शरीर, व उसके अग बनते हैं—अर्थात् इस उदय के वश से तरह तरह की ऐसी अवस्थाएं हो जाती हैं जिनसे जीवात्मा एक प्रकार की पर्य्याय सज्ञा में गिना जाता है। जैसे यह बौना है लूला है, अन्धा है, बहिरा है, इत्यादि।

नाम कर्म की ६३ प्रकृति है—

४ गति—जिसके उदय से जीवात्मा एक जन्म से दूसरे जन्म को जाय वह गति नरक तिर्यच, मनुष्य देव ऐसी चार हैं। [नोट—दूसरा जन्म धारण करने में आयु के साथ नाम कर्म भी सहायक होता है।]

५ जाति—जिसके उदय से इस जीवात्मा के १ इन्द्री व २ इन्द्री व ३ इन्द्री व ४ इन्द्री व ५ इन्द्री शरीर में पैदा हों।

५ प्रकार का शरीर—पुद्गल (Matter) के जिस तरह के परमाणुओं से शरीर बनता है उसके पाच भेद हैं।

(क) औदारिक—जो शरीर अपनी माता के खून और पिता के वीर्य से गर्भ में बनता है उसे गर्भज कहते हैं और

का काम दे. यदि काले रंग का विचारे तो द्वेष पैदा हो जाय किन्तु मोक्ष मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति के लिये सदा यह अक्षर सफेद रंग ही का देखना योग्य है।

पंच परमेष्ठी नमस्कार लक्षण मंत्र का विचार—अपने हृदय में एक सफेद चमकता हुआ आठ पत्र का कमल विचार करै उसकी बीच की कर्णिका में सात अक्षर का मंत्र अर्थात् 'णमो अरहंताणं' विचारे, और इस कमल की चार दिशा सम्बन्धी पत्रों पर क्रम से यह ४ मंत्रो को विचारेः—

१—णमोसिद्धाणं—५ अक्षर।

२—णमो आयरियाणं—७ अ०

३—णमोउवज्झायाणं—७ अ०

४—णमोलोये सव्व साहूणं—९ अ०

और इस कमल के चार विदिशा याने कोनों के पत्रों पर यह ४ मंत्र विचारे—

सम्यग्ददर्शनाय नमः १ सम्यग्ज्ञानाय नमः २ सम्यग्चारित्राय नमः ३ सम्यग्तपसे नमः ४

इस तरह ९ पदों को कमल पर स्थाप कर ध्यान करने से चित्त में बहुत पवित्रता प्राप्त होती है।

इसी तरह पंच परमेष्ठी के नमस्कार रूप नीचे लिखे यह भी मन्त्र हैं। १६ अक्षर का मन्त्र—अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः;—

६ अक्षर मंत्र—अरहंत अरहंत सिद्ध।

४ अक्षर मंत्र—अरहंत—

जो गर्मी, सरदी, आग, पानी, मिट्टी आदि वस्तुओं के संयोग से तरह तरह के लट, जूयें आदिकों के शरीर बनते हैं उसे सन्मूर्छन कहते हैं। यह दोनों तरह के शरीर औदारिक कहलाते हैं।

(ख) वैक्रयक-देव व नारकियों के शरीर जिस तरह के परमाणुओं से बनते हैं उसे वैक्रयक कहते हैं, अर्थात् इनमें सकुड़ जाने, फैलजाने, आदि की शक्ति होती है, तथा यह परमाणु पारे की तरह भिन्न हो जाने पर भी शीघ्र मिल जाते हैं।

(ग) आहारक—एक प्रकार का बहुत ही महीन पुद्गल के परमाणुओं का शरीर जो ऋद्धिधारी मुनि के मस्तक से निकलता है और केवल ज्ञानी के चरणों को छू कर लौट आता है, इसके जाने आने में कुछ समय लगते हैं। जब मुनि को कोई भारी संदेह होता है तब वह ऐसा करते हैं।

(घ) तैजस—यह बहुत ही महीन तेज रूप परमाणु हैं जो कि संसार के सब जीवों के साथ सदा रहते हैं और इनका वेग किसी किसी ऋद्धिधारी मुनि में प्रकट हो जाता है, अर्थात् जब मुनि के चित्त में अधिक दया आती है तो दाहने कन्धे से यह तैजस शरीर निकल कर बहुत शीघ्र उनके विचारे हुए क्षेत्र में भ्रमण कर लौट आता है और उतने स्थान के रोगादि को शांत कर देता है। इसी प्रकार जब किसी मुनि के क्रोधकी आग भड़क उठती है और वह चितमें जिनसे क्रोध हुआ उनका नाश विचारते हैं, तब बायें कन्धे से एक तेजका पुंज निकलता है और वह उनको भस्म कर मुनि को

अध्याय २९वां

रूपस्थ ध्यान ।

सोरठा

सर्व त्रिभुव जुत जानिये, ये ध्यावैं अरहंत कूं ।
मन वस करि मतिमान, ते पावैं तिस भाव कूं ।

अर्थात्—अपने मन में अरहंत का स्वरूप विचारना सो रूपस्थ ध्यान है—अर्थात् अरहंत भगवान के स्वरूप में अपने मन को लगाकर यह विचारना कि इन अरहंत भगवान ने ज्ञानावरणी, दर्शनावरणीं, अंतराय, मोहनी ऐसे चार घातिया कर्मों का नाशकर अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख और अनंत वीर्य्य प्रकट किया । केवल ज्ञान के होते ही समवशरण की रचना हुई । श्री जिनेन्द्र भगवान सिंहासन पर अंतरीक्ष में विराजमान हैं । देवादिक नाना प्रकार की भक्ति कर रहे हैं । भगवान के रागद्वेष, भूख प्यास, रोग आदि कोई भी दोष अठारह दोषों में नहीं है । भगवान शांत स्वरूप देखते ही भव्य जीवों का चित्त कमल की भांति प्रफुल्लित हो जाता है, जिनकी निरक्षरी वाणी सब सभा उपस्थित जनों के समझ में आती है, जिसको सुन कर ही जीव धर्म की ओर गमन करते हैं । इत्यादिक उनकी मूर्त्ति का ध्यान करते करते यह ध्यानी उनही से तन्मय हो जाता है अर्थात् एक मेंक हो जाता है । तब मन की वृत्ति ऐसी हो जाती है कि जिस समय मन और वस्तुओं से हटाकर लीन किया उसी समय मन में श्री अरहंत की वीतराग मूर्ति ही झलकने लगती है । इसी तरह अभ्यास हो

भी भस्म कर देता है। इस तेजस शरीर को विद्युत शरीर के समान कहा जा सकता है।

(ख) कार्माण एक प्रकार के बहुत ही महीन पुद्गल के परमाणु—जाकि आत्माके साथ एक सूक्ष्म शरीर बनाये हुये ससार अवस्था में सदा साथ रहते हैं। इन परमाणुओं की कर्म सज्ञा है। भावों के कारण इनका मेल होता है और यह जीवात्मा क साथ रहते हुय समय समय पर अपना असर दिखलाया करते हैं जिससे मोहवान जीव सुख तथा दुख अनुभव करते हैं।

३ अगोपाग—जिनके उदय से अग व उसके भाग बने, जैसे शरीर के आख, नाक आदि। आदारिक वक्रयक, आहारक इन तीन प्रकार के शरीर ही के अगोपाग होत है।

२ निर्माण—जिसके उदय से आख, नाक कान आदि यथा स्थान होवें सो स्थान निर्माण तथा जिसके उदय से किसी प्रमाण रूप होवे सो प्रमाण निर्माण।

५ बन्धन—जिनके उदय से पाच प्रकार के पुद्गल परमाणुओं का परस्पर अपने अपने शरीर रुप बन्ना होय।

५ सघात—जिनके उदय स पाच प्रकार के शरीर रूप पुद्गल के परमाणु आपस में अपने अपने शरीर रूप एकसार मिल जाय।

६ सस्थान—जिनके उदय से शरीर का आकार [डौल डौल] बन। इसके ६ भेद यह हैं—

[क] समचतुर सस्थान—आंख, नाक, कान, मुह, हाथ पैर का आकार मुनासिब सुन्दर बनना।

राग और द्वेष से अत्यन्त दूर आनन्द रूप हैं, वैसे मैं हूं। जैसे वह तीन लोक अलोक का ज्ञान धारनेवाले हैं वैसा मैं हूं। उनमें मुझमें जाति अपेक्षा कोई भेद नहीं है। किन्तु भेद केवल यही है कि उनके गुण शानपर घिसे व पालिस किये हुये नगीने की भांति झलक रहे हैं, और हमारी आत्मा के गुण खान से निकले हुए पत्थर की भांति दवे हुए हैं। यदि हम तप द्वारा इसकी पालिस करेंगे तो यह भी सिद्धभगवान के सदृश हो जायगी।

यह सिद्ध भगवान ज्ञानानंद स्वभाव हैं सो मैं हूं। मै अपने को सिद्ध भगवान ही मानता हूं। वह मेरे जाति के सम्बन्धी हैं। उनसे मित्रता करूंगा अर्थात् उनही के गुणों में यदि मैं लीन हो जाऊंगा तो उनके गुण भले मित्र की तरह अपने में मुझे मिला लेंगे, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है।

इस प्रकार सर्व संसार से मन हटाकर जो निज आत्मा को सिद्ध मान कर ध्यान करते हैं वे अभ्यास के बल से कर्मो को नाश कर उस रूप ही हो जाते हैं।

यह ४ प्रकार का धर्म ध्यान परमानंद का करनेवाला तथा शुक्ल ध्यान का पैदा करनेवाला है।

आगम मे साधारण रूप से धर्म ध्यान के ४ भेद यह भी कहे है—आज्ञा विचय - अरहंत की आज्ञा को शास्त्रद्वारा जान कर विचारना, इससे परिणाम शुभ होते है; अपाय विचय—कर्मो के दूर करने के उपाय विचारते रहना; विपाक विचय—कर्मो के फल का विचारना कि संसार मे जीव अपने पुण्य तथा पाप के वश में होकर तरह तरह के दुख सुख पाते

[ख] न्यग्रोध परिमंडल संस्थान-शरीर का आकार ऊपर बड़ा और नीचे छोटा हो। जैसे वड़ वृक्ष।

[ग] स्वातिक सस्थान—शरीर का आकार नीचे चौड़ा ऊपर सकुब्जक।

[घ] कुब्जक संस्थान-पीठ—बीच में बड़ी ऊपर नीचे हलकी हो। इसको कुबड़ापन भी कहते हैं।

[च] वामन संस्थान—हाथ पैर छोटे हों उदर मस्तक बड़ा हो अर्थात् बौनापन हो।

[छ] हुंडक सस्थान—शरीर के सब अंग उपग नीचे ऊंचे वेढगे हों।

६ संहनन—जिनके उदय से हाड़ों का विशेष बंधन हो। यह भी ६ प्रकार का है—

[क] वज्र ऋषभ नाराच संहनन—जिस शरीर में संहनन कहिये हाड़, ऋषभ कहिये नश के वेठन, नाराच कहिये कोले, यह तीनों वज्रमय कठोर हों।

[ख] वज्र नाराच सहनन—जिसमें हाड़ और कीले वज्रमय हों पर नश के बन्धन वज्रमय न हों।

[ग] नाराच संहनन—जिसमें हाड़ की सन्धि कीलों से कीलित हो।

[घ] अर्धनाराच संहनन—जिसने हाड़ की सन्धि में कीले आधे हों, एक तर्फ हो पर दूसरी ओर न हो।

[च] कीलक सहनन—जिसमें हाड़ की सन्धि छोटे कीलों से मिला हो।

[छ] असंप्राप्तासृटपाटिक संहनन—जिसमें हाड़ की सन्धि में अन्तर [फरक] हो। चौगिरद बड़ी छोटी नस

समागम अनंत जन्मों के भीतर घूमते रहते हुए किसी कारण विशेष से प्राप्त हो जाय तो हो जाता है। ऐसे जन्म पाने पर फिर भी जो उन कर्मों के नाश का उपाय नहीं करते हैं कि जिन कर्मों के कारण यह जीव सदा काल दुःख पाता रहा तथा यहां भी दुःख पा रहा है, तो हम तो उस व्यक्ति को विचारशून्य के सिवाय कुछ भी नही कह सकते हैं।

इस लिये जो इस नर देही को सफल करना चाहें उन्हें आज कल का मुंह नही ताकना चाहिये, किन्तु सच्चे हृदय से अपनी इस आज कल करने में नाश हो जानेवाली पर्याय से अपनी आत्मा का भला कर लेना चाहिये! कल को यह न रही तो पछताना होगा कि हाय, हम चाहते थे कि इस नर देही मे अपने पूर्व बाँधे हुए कर्मों की निर्जरा करें। हाय! अब क्या करें, अब तो यमराज के मुख मे चले जा रहे है।

अध्याय ३१वां

मोक्षतत्व।

सातवां तत्व मोक्ष है। जब इस जीव से चार घातिया कर्मों के पुद्गल भिन्न हो जाते है तब यह जीव जीवन्मुक्त हो जाता है अर्थात् अरहंत होकर आत्मीक सुख भोगता है। इस दशा में केवल ४ अघातिया कर्म जली हुई रस्सी की भांति बाकी रहते हैं, जिनका फल उस अरहंत आत्मा के आनन्द मे किसी प्रकार बाधक नही होता।

यह आयु, नाम, गोत्र, वेदनी रूप चार कर्म भी जब बिलकुल छूट जाते हैं तब यह आत्मा शरीर से निकलते ही

लिपटी हो, मासादिक से छाई हो। यह सब सहनन मनुष्य और तिर्यच के होते है, देवनारकियों के नहीं, क्योंकि उनके हाड नहीं होते हैं।

(६) स्पर्श—जिनके उदय से शरीर के स्पर्श [छूने] के गुण पैदा हों। यह ८ प्रकार का है—कर्कश, कोमल, भारी, हलका, चिकना, रूखा, ठंढा, गरम।

५ रस—जिनके उदय से शरीर में रस पैदा हों। वे पांच प्रकार के हैं—तेज, कड़ुवा, मीठा, खट्टा, कषायला।

२ गंध—जिनके उदय से शरीर में गंध हो। यह दो प्रकार का है—एक सुगंध, एक दुर्गंध।

५ वर्ण—जिनके उदय से शरीर में रंग पैदा हो। यह पांच प्रकार का होता है—काला, नीला सफेद, लाल, हरा।

४ आनुपूर्वी—जिनके उदय से आनुपूर्वी हो। आनुपूर्वी का प्रयोजन यह है कि मरण होने के पीछे जब तक यह शरीर धारण करने के लायक पुद्गल नहीं लेवे तब तक आत्मा का पहिले शरीर का सा आकार बना रहता है। यह आनुपूर्वी अवस्था अधिक से अधिक ३ समय तक रहती है। यह ४ गति की अपेक्षा ४ प्रकार की होती है। जैसे कोई मनुष्य मर कर देव गति को पाता हो तब जब तक देवमई पुद्गल नहीं लेवे तब तक कर्म सहित आत्मा का आकार मनुष्य शरीर के सदृश रहना सो देव गत्यानुपूर्वी है।

यह ६५ पिंड प्रकृति कहलाती हैं। अब आगे २८ अपिंड प्रकृति कही जाती हैं।

इन सात तत्वों का ज्ञान बढ़ाने के लिये हमें नित्य **शास्त्र स्वाध्याय** करना चाहिये, ताकि हमें इनका ज्ञान और भी बढ़ जाय। और उसीके साथ अपने योग्य आचरण को भी धारण हमारा कर्तव्य है।

आचरण के नियम मुनि और श्रावक के लिये भिन्न भिन्न है—अहिंसा, सत्य, असत्य, ब्रह्मचर्य्य और परिग्रह त्याग, इन पांच व्रतों को पूरे तौर से पालना महाव्रत के धारक मुनियों का काम है। और इन्हीं ५ व्रतों को थोड़ा पालना श्रावक का कर्तव्य है। जैसे श्रावक स्थूल (त्रस) हिंसा न करके सूक्ष्म-हिंसा अर्थात् एकेन्द्री जीवों की वाधा नहीं बचा सकता है। सत्य बालने मे उस असत्य मे दोष नहीं समझता जिससे किसी दूसरे के प्राण बचें, चोरी न करने मे, सर्व स्थानो मे रहनेवाले जल व मिट्टी की चोरी नहीं बचाता है। मुनि विना दिया जल भी नहीं लेते। ब्रह्मचर्य में श्रावको को स्वस्त्री संतोष नाम व्रत होता है। मुनि स्त्री मात्र के त्यागी है। परिग्रह में श्रावक अपने वर्तने योग्य सामान की गिनती कर लेता है जब कि मुनि के गिनती न होकर सर्व परिग्रह का त्याग होता है।

इसीके अंतर्गत और भी कई भेद दोनों सम्प्रदाय के आचरण विषय मे है। इनका विशेष वर्णन इस जिनेन्द्रमत दर्पण की तीसरी जिल्द मे समय पाकर किया जावेगा॥

॥ समाप्तम् ॥

१ अगुरुलघु—जिसके उदय से देह न लोहे के पिंड की तरह भारी हो और न आक की फफूंदी की तरह हलकी हो। [यहां अगुरुलघु जो द्रव्य का स्वभाव है उससे प्रयोजन नहीं]

१ स्वघात—जिसके उदय से अपने शरीर से आपका घात करे-जैसे बड़ा, सींग, लम्बा स्तन बड़ा पेट।

१ परघात—जिसके उदय से ऐसा अंग हो जिससे दूसरे का घात हो। जैसे तीक्ष्ण सींग व नख, बिच्छू का डङ्क आदि।

१ आताप—जिसके उदय से आतापमय शरीर पावे। जैसे सूर्य के विमान में पृथ्वी कायिक जीव। इन जीवों को स्वयं धूप की गरमी नहीं मालूम होती जब कि दूसरों को बहुत आताप होता है।

१ उद्योत—जिसके उदय से उद्योत रूप शरीर पावे। जैसे चन्द्र के विमान में पृथ्वी कायिक जीव।

१ उश्वास—जिसके उदय से श्वासोश्वास आवे।

१ विहायो गति—जिसके उदय से आकाश में गमन हो।

१ प्रत्येक शरीर—जिसके उदय होने से एक आत्मा एक शरीर को भोगे।

१ साधारण—जिसके उदय से बहुत जीव भोगने योग्य एक शरीर पावे।

१ त्रस—जिसके उदय से दो इन्द्री से पंचेन्द्री तक में उपजे।

१ थावर—जिसके उदय से १ इन्द्री पैदा हो।

१ सुभग—जिसके उदय से दूसरे को अच्छा मालूम हो।

१ दुर्भग—जिसके उदय से रूपादि सुंदर गुण होने पर भी दूसरे को बुरा मालूम पड़े।

१ सुस्वर—जिसके उदय से शब्द सुहावना निकले।

१ दुस्वर—जिसके उदय से बुरा असुहावना शब्द निकले।

१ शुभ—जिसके उदय से मुंह, हाथ, पैर आदि शरीर के अंग सुंदर हों।

१ अशुभ—जिसके उदय से मस्तक मुख आदि असुंदर [बदसूरत] हों।

१ सूक्ष्म—जिसके उदय से ऐसा महीन शरीर पावे जो जमीन, पहाड़, आग, जल, कपड़ा आदि में से होकर निकल जाय, रुके नहीं।

१ बादर—जिसके उदय से रुकने व रोकनवाला शरीर पावे।

१ पर्याप्त—जिसके उदय से जिस पर्याय में जाय उसके अनुसार शरीर के भाग पूर्ण करने की शक्ति पावे।

१ अपर्याप्त—जिसके उदय से पर्याय सम्बन्धी शरीर के भागों को पूरा करने की शक्ति न पा कर पीने ही घड़ी के भीतर मरण कर जाय।

१ स्थिर—जिसके उदय से रस धातु उपधातु अपने अपने स्थान में दृढ़ हों।

१ अस्थिर—जिसके उदय से रसादि दृढ़ न हों।

१ आदेय—जिसके उदय से प्रभायुक्त [चमकदार] शरीर हो।

१ अनादेय—जिसके उदय में प्रभारहित शरीर हो।
१ यशस्कीर्ति—जिसके उदय से गुण प्रकट हो।
१ अयशस्कीर्ति—जिसके उदय से अवगुण प्रकट हो।
१ तीर्थंकर—जिसके उदय से तीर्थंकर पद का शरीर हो।

यह २८ अपिंड प्रकृति हैं—

सब मिलकर ९३ प्रकृति नाम कर्म की हैं। अब यह देखना चाहिये कि यह नाम कर्म क्यों कर संसारी जीवों के बंधते हैं कि जिनके उदय से ऊपर कही अवस्थायें भोगनी पड़ती हैं, क्योंकि यह "कर्म" का नियम कारण और कार्य के आधीन है। इसीको Cause and effect कहते हैं और इन कर्मों का बन्धन राग और द्वेष से होता है जैसा कि "Mr. C. W. Leadwater का कथन है।

"If a man has within him only pure, high, and unselfish desires and emotions, he will chiefly set into vibration the more refined matter of that astral body: if, on the contrary his desires, emotions and passions are coarser and selfish, almost the whole of them will express themselves in the lower, denser, grosser parts of that astral vehicle."

भावार्थ—अच्छे विचारों से शुभ और बुरे विचारों से अशुभ कर्म्म बँधते हैं। पस यह कर्म्म समय समय पर उदय

अहा ! कैसी विदूषी थी भारत की नारी। पिया की पियारी पिता की दुलारी॥ जो सन्तान अपनी सुधारें बढ़ाओ। तो सारे हो तुम अपनी पुत्री पढ़ाओ॥ जो कन्या को अपनी पढ़ाओगे पिता। चली जायगी तब नाता से अविता–
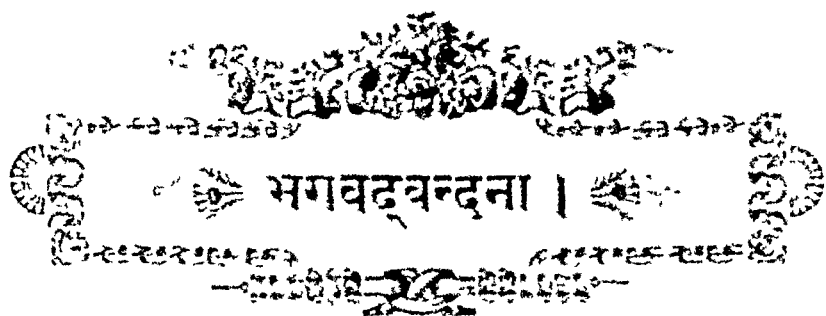
हे जगवन्धु जगतहितकर्ता श्री जिन हम पर दया करो।
ज्ञान सुधा वर्षा कर स्वामी विद्या दे सब दुःख हरो॥१॥
केवल ज्ञान ज्योतिमे तुमने जगत चराचर देख लिया।
सबके स्वामी अन्तर यामी, हमको सद उपदेश दिया॥२॥
हम सब नमन करें तव पदको धन्य धन्य गुण आगर हो।
भव-ज्वाला से जले जीवको, शान्ति-सुधाके सागर हो॥३॥
करने से गुण-गान तुम्हारा, पाप शाप सन्ताप भगे।
होकर इष्ट मनोरथ सिद्धि, हृदय माँहि सत ज्ञान जगे॥४॥
तव शासन पर चलें सदा हम, करुणाकर उपकार करो।
जैन-बालिका-गण के स्वामी, दे विद्या उद्धार करो॥५॥

आ कर अपना रस देते रहते हैं। इसीको कर्मफल कहते है। यही कर्मफल यदि राग द्वेष सहित भोगा जाता है तो आगामी कर्म बधन का कारण हो जाता है। इस प्रकार समार के मोही जीव एक ओर से कर्म का उदय फल पाते हैं, दूसरी ओर कर्म बाधते जाते हैं जो कर्म उसी भव में व दूसरे दूसरे भव में समयानुसार उदय में आकर फल देते हैं। यही "कारण और कार्य्य" का नियम संसारी प्राणियों को सुख दुख का हेतु है।

नाम कर्म के आश्रव तथा बन्ध के कारण यह है। मन, वचन, और काय के कुटिल अर्थात् टेढे रखने से अशुभ नाम कर्म का आना होता है। जैसे मिथ्यात धरना चुगली खाना, खोटी वस्तु अच्छी में मिला कर बेचना, खोटा कसम खाना, मद करना, नकल चिढ़ाना, दूसरे के बुरे अग देख खुश होना आदि। इसी प्रकार मन वचन काय का सरल रखने से शुभ नाम कर्म का आश्रव होना है। जैसे धर्मात्मा को देख खुश होना, प्रमाद न करना आदि।

पाठक! अपने परिणामों ही के आधीन हमारा भाग्य (Destiny) बनता है जिसको कर्म कहते हैं। इस लिये हमको अपने परिणाम निर्मल रखने चाहिये। तथा अन्धे, लूले, कुबडे, काने आदि होने से बचने के लिये हमको अपने वचन और काय की चेष्टा भी ठीक ठाक रखनी चाहिये।

तीर्थंकर नाम कर्म बध उस समय होता है जब सोलह

श्रीमात के प्राणोंकी रक्षा आज कीजिये ।
धन्य धन्य घड़ी आजकी सेवा में लगी है ।
अब पुत्र पुत्रियों पै मात कृपा कीजिये ॥
अब हृष्टपुष्ट होके मात दया भाव से ।
संसार भ्रमण तोड़के उद्धार कीजिये ॥
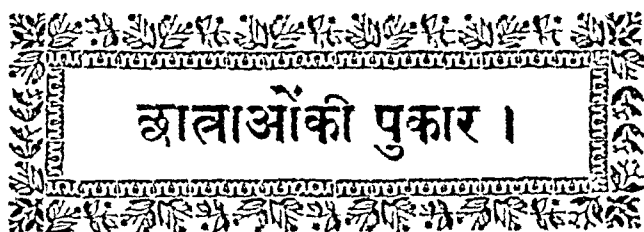
कव्वाली ।

सुनो तुम जैन धर्मज्ञो, यही विनती हमारी है ।
सुविद्या दान हम मांगें, रही मरज़ी तुम्हारी है ॥ टेक ॥
जो धार्मिक और लौकिक, काम दुनियां के रहें कुछभी ।
विना विद्या के सब फीके, जगत में धन य भारी है ॥ १ ॥
इसी धन से धनी नामी, हुए जरमन औ जापानी ।
यह लौकिक का नमूना है, धरम की बात न्यारी है ॥ २ ॥
जैन जाती में फैलाना, जो चाहो सुःखदा विद्या ।
बनाओ शिक्षिता हमको, तभी कुछ सुख निशानी है ॥ ३ ॥
भवन विद्या के जितने है, करो उनकी सभी सेवा ।
दरब दिल खोल कर देदो. चपल कमला-कुमारी है ॥ ४ ॥

कारण भावना का विचार किया जाता है। इन भावनाओं का वर्णन जैन शास्त्रों से देख कर मालूम कीजियेगा।

अध्याय ग्यारहवां

७—गोत्रकर्म।

यह वह कर्म है जिसके उदय से यह जीवात्मा ऐसे कुल का संयोग पावे जिससे इसको दुख की प्राप्ति हो। यह दो तरह का होता है।

१ उच्च गोत्र—अच्छे चरित्र वाले लोकमान्य कुल में जिसके उदय से जन्मे।

१ नीच गोत्र—खोटे आचरण वाले लोकनिंद्य कुल में जिसके उदय से पैदा हो। जहां आपको भी हिंसा चोरी आदि दुष्ट कर्म करने का समागम सहज में मिल जाय।

इस कर्म के आश्रव होकर आत्मा के साथ मिलने में नीचे लिखे कारण हैं।

१ परनिन्दा, आत्मप्रशंसा—दूसरे में अवगुण हों वा न हों, परन्तु किसी अपने विषय के मतलब से दश आदमियों में उनकी बुराई करनी और अपने मे गुण हो वा न हों, किसी अपने विषय कषाय के मतलब (धनादि का लोभ) से दश आदमियों के सामने अपनी तारीफ़ करनी।

२ पर-सत-गुणाच्छादन आत्म असत्गुणाच्छादन—दूसरे में गुण होते हुए भी ज़ाहिर न हो ऐसी चाह व कोशिस

माता पिता कुटुम्बी, सम्बन्धी लोग जितने ।
भरतार से भी विनती, कर जोड़ कर सुनाओ ॥ ६ ॥
विद्या दो हमको माता, शिक्षा दो हमको भाई ।
बिन ज्ञान हमको मूर्खा, मत जानकर बनाओ ॥ ७ ॥
निज स्वार्थ में कमीका, कुछ डर न दिल में करना ।
कन्या भी होवे विदुषी, यह ख्याल दिल में लाओ ॥८॥
धर्मज्ञ विदुषी होकर, हम भी करेंगी सेवा ।
संसार-यात्री पद को, जल्दी सफल बनाओ ॥ ९ ॥
इस भाँति विनती करके, चेतोरी जैन बहिनों ।
होवे सफल मनोरथ, जिन वाणी शरण आओ ॥ १० ॥
जागोरी जैन बहिनो कुछ तो भला कमाओ ।
मानुष जन्म को पाके वृथा ही मत गवाँओ ॥ ११ ॥

बहिनों उठो ।

दोहा ।

विद्या विनु सोहे नहीं, छवि, यौवन, कुल, मूल ।
रहित सुगन्ध सजे न वन, जैसे सेमर-फूल ॥

करना, अपने में अवगुण होते हुए अवगुणों के ढकने और न होते गुणों को प्रकट करने की चाह व कोशिस करना।

इसके सिवाय अपनी जाति, कुल, रूप, धन विद्या का घमंड करना, दूसरे की हसी करना, व देव गुरु धर्म व अपने से बड़ों की विनय, सत्कार नहीं करनी, यह सब नीच गोत्र के आश्रव के कारण हैं।

इसके विरुद्ध कारणों के होने से उच्च गोत्र रूपी कर्मों का आश्रव होता है। जैसे दूसरे के गुणों की विनय व प्रशंसा, अपने में गुण होते हुए भी विनय व प्रशंसा नहीं चाहना, जैसे भस्म के नीचे दबी अग्नि रहती है। इस तरह रह कर अपने बड़प्पन को अपने से प्रकट न करना।

अध्याय बारहवां

८—अन्तराय कर्म।

यह वह कर्म है जिसके उदय आजाने से बनते व सोचे हुए काम में विघ्न व विगाड़ पड़ जाता है। इसके ५ भेद हैं।

१ दानान्तराय—जिसके उदय से देने की चाहना करे व कोशिस करे परन्तु दे न सके।

२ लाभान्तराय- जिसके उदय से लाभ होना चाहे व कोशिश करे, पर लाभ न हो सके।

३ भोगान्तराय—जिसके उदय से संसार की वस्तुओं को भोगने की चाहना करे व कोशिश करे, पर वह भोगने में न आवें।

मेरी विनती सुनो कर ध्यान

चहुं आश्रम में गृहस्थ धर्म है सब से श्रेष्ट महान् ॥ मेरी० ॥
पुरुष तो है सो घरको शोभा, उनको तिरिया जान ।
तिय की शोभा पतिव्रत धर्म है रक्षा करे भगवान ॥ मेरी० ॥
दोनो की शोभा परस्पर प्रीति पानो दूध समान ।
जिस घर में ये दोनों खुश है वह घर स्वर्ग समान ॥ मेरी० ॥
मुख की शोभा मीठे वचन है हाथ की शोभा दान ।
दान की शोभा पात्र हो अच्छा कह गये पुरुष महान् । मेरी०॥
देह की शोभा परोपकार है धर्म उसका जो जान ।
धर्म की शोभा दया, अहिंसा सबमें यही प्रधान ॥ मेरी० ॥

स्त्रियों के आभूषण ।

भला ओढ़ोरी सुहागिन पतिव्रत की चूनरी । मलमल विद्या को बनवाओ, रंगत बुद्धि की रंगवाओ, गोटा गोखरू ज्ञान लगाओ, बूटे सत् शास्त्र अनुसार, जगत् में चमके चूनरी ॥ १ ॥ मिस्सी मीठे

४ उपभोगान्तराय—जिसके उदय से संसार की उपभोग करने योग्य वस्तुओं को काम में लाने की चाहना व कोशिश करे, पर काम में न ला सके।

[भोग—उन वस्तुओं को कहते हैं जो एक बार काम में आवे फिर किसी काम की न रहें। जैसे भोजन, सुगन्ध आदि। उपभोग—उन वस्तुओं को कहते हैं जो बार बार काम में आवें। जैसे मकान कपड़े आदि]

५ वीर्यांतराय- जिसके उदय से किसी काम के करने का उत्साह करे पर वह उत्साह काम न कर सके।

इस अंतराय कर्म के आने और आत्मा के साथ बंधने में कारण विघ्न का डालना है। कोई दान देता हो व देने की इच्छा करता हो उसको किसी न किसी प्रकार दान देने से रोकने की चाह व कोशिश करना, कोई को लाभ होता हो उसको लाभ न होने देने की चाह व कोशिश करना, दूसरे के भोगने व उपभोगने योग्य वस्तुओं को बिगाड़ने की चाह व कोशिश करना दूसरे की शक्ति व उत्साह को बिगाड़ने को चाह व कोशिश करना यह सब अंतराय कर्म के आश्रव के कारण है। इसके सिवाय और जितने ऐसे ऐसे काम हैं जिनके करने से हमारा व हमारे आधीन स्त्री व बालकों का विगाड़ होता है, ये सब अंतराय कर्म के आश्रव के कारण हैं। जैसे लड़के व लड़कियों को विद्या न पढ़ाने से उनके ज्ञान प्रकट होने मे विघ्न पड़ने से, तथा बालकों की शादी छोटी उम्र मे कर देने से जिससे उनका मन विद्या लाभ करते करते रुक जाय, व अपने अधीन नौकर चाकर व

जीवों की रक्षा करके, सत्य बोलना सभी ।
चोरी से हटके ब्रह्मचर्य पालना सभी ॥
अपने से बड़ों को सदा मानों पिता धर्मी ॥
एक पतिको छोड़ करके बहिनो भ्राता सुता सभी ॥
दिलको बनाके ऐसा जो, जिनदेव ध्यावेंगी ॥
क्रम से उतर के पार बहिन चैन पाओगी ॥ ३ ॥
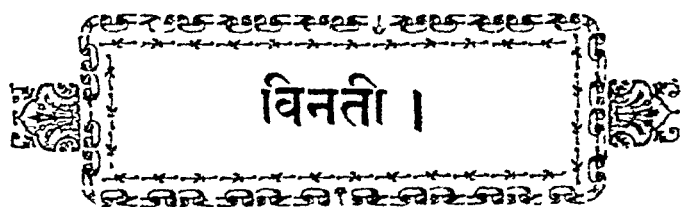
एक विनती सुनो हमारी, हम अबला है सुता तुम्हारी ।
तुम हो माता पिता हमारे, ममता करके पालन हारे ॥
हमको जन्म आपने दिया, भली भांति है पालन किया ।
हमें धर्म से वंचित किया, अथवा नर से पशु कर दिया ॥
भूषण तो बहु मूल्य पिन्हाये, लेकिन अक्षर दो न सिखाये ।
हा ! विदुषी जो हम हो पाती, कुलकी कीर्ति अवश्य बढ़ाती ॥
हम गृह देवी भी कहलाती, इस दुनियाँ को स्वर्ग बनातीं ।

प्रजा को धर्म सेवन में विघ्न डालने से अंतराय कर्म का आश्रय होता है। इसी प्रकार विद्यालय, औषधालय भोजनालय, आदि धर्म कार्यों में उन्नति न चाहने से तथा बिगाड़ के भाव रखने से तीव्र अंतराय कर्म का आश्रव होता है। जो धन यात्री लोग तीर्थयात्रा में तीर्थों पर तीर्थ के सुप्रबन्ध व उचित धर्म कार्य के लिये देते हैं उस धन से सुप्रबन्ध व उचित धर्म कार्य के लिये देते हैं उस धनसे सुप्रबन्ध न कर व उचित धर्म कार्य को न कर व्यर्थ डाले रखना व अपने काम में ले आना तीव्र अंतराय कर्म का आश्रव करने वाला है।

इस तरह यह आठ प्रकार का कर्म हम सन्सारी जीव अपने ही भावों के द्वारा बांधते हैं और आपही उनके उदय आने पर उनका फल भोगते हैं जैसे मदिरा हम आपही पीते हैं और आपही दुःख भुगतते हैं तथा बदहजमी करने वाला भोजन हम आपही खाते हैं और आपही अनेक रोगों को अपने में पैदा कर लेते हैं।

इस तरह ५+६+२+२८+४+९३+२+५=१४८ प्रकृति मुख्य करके ८ कर्मों की हैं। पर इनके भेद यदि सूक्ष्म दृष्टिसे किये जावें तो और वेगिनती हो सकते हैं।

इस प्रकार यह कर्म सर्व पौद्गलिक हैं जड़ हैं, हमारे ही किये हुए हैं, अजीव हैं।

अध्याय तेरहवां

अन्य ४ द्रव्य

धर्म द्रव्य यह है—जो जीव पुद्गल को चलने में इस तरह

मदद करै जैसे मछली को चलने के लिये पानी की जरूरत है, पानी मछली को प्रेरणा नही करता है कि चलो किन्तु विना पानी के नही चल सक्ती इसी प्रकार धर्म द्रव्य प्रेरणा करके जीव और पुद्गल को नहीं चलाता है किन्तु उदासीन सहायक होता है।

अधर्मद्रव्य—धर्म द्रव्य से उलटा काम करता है अर्थात् जीव पुद्गल को ठहरने में सहायक होता है; जैसे रास्ते में जाते हुये मुसाफिर को वृक्ष की छाया सहायक होती है।

आकाशद्रव्य—जोकि जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म. काल इन पांच द्रव्यों को स्थान दे।

कालद्रव्य—वह द्रव्य है जो अन्य द्रव्यों को पर्याय व दशा पलटने मे कारण रूप हो। यह दो प्रकार का है १ व्यवहार-काल—समय घड़ी घंटा आदि। निश्चयकाल-आकाश के एक एक प्रदेश मे काल का एक एक अणु जैसे रत्नो की राशि। इस द्रव्य का एक अणु दूसरे अणु मे एक मे एक होकर नही मिलता। इसी से इस द्रव्य को अकाय कहते हैं।

प्रदेश उतने स्थान को कहते हैं जितनी जगह को पुद्गल का छोटा से छोटा अविभागी (जिसका फिर भाग न हो सके) परमाणु रोकता है। इस १प्रदेश वाले आकाश में धर्म द्रव्य और अधर्म-द्रव्य का एक प्रदेश और काल की एक अणु और पुद्गल के वहुत से परमाणु आ सक्ते है, इसी प्रकार जीव के शरीर मे छोटे से छोटे में वहुत से अन्य शरीर धारी जीव आ सकते है। इसी से जीव पुद्गल अनन्त हैं किन्तु धर्म, अधर्म, आकाश, काल एक एक द्रव्य है—जैसे १ दीपक

एक कमरे में जलाने से रोशनी के परमाणु कमरे भर में फैल जाते है किन्तु यदि दश दीपक उतनेही स्थान में जलाये जाय तो उतनेही स्थान में आ सकते हैं। यह परमाणु पुद्गल के स्थूल सूक्ष्म हैं जब इनके अणुओं में यह शक्ति है तो सूक्ष्म, व सूक्ष्म सूक्ष्म परमाणुओं में व जीव द्रव्य में यह शक्ति क्यों नहीं हो सकती है* इसी लिये एक जीव के एक प्रदेश भर स्थान में अनन्ते कार्माण पुद्गल के परमाणु आ सक्ते हैं तथा एक निगोदिए के सब से छोटे शरीर में अनन्ते शरीरी जीव समा सकते हैं। इन द्रव्यों को जहा पाया जाय उनको ही लोक (दुनिया) कहते है। यह सर्व लोक में है तथा इन द्रव्यों ही की पर्याय पलटन से नाना प्रकार के मनुष्य, जन्तु, वृक्ष, पहाड, धातु औषधि आदि पाई जाती है इन छहों में सब से ज्यादा काम पुद्गल और जीव का है बाकी ४ द्रव्य केवल सहायता मात्र है।

---

*देखिए श्री पार्श्वपुराण जी को।

शिष्यप्रश्न—धर्म अधर्म काल अरु चेतन चारों दरब अरूपी गाए, तातें एक आकाश देशमें प्रभु सब के प्रदेश समाए मूरतवत अनते पुद्गल ते उस नभ में क्योंकर माए। यह संशय समझाय कहो गुरुदास होय अब पूछन आये।

गुरुउत्तर सोरठा—बहु प्रदीप परकाश यथा एक मंदिर विषैं। लहै सहज अवकाश, बाधा कछु उपजे नहीं। त्योंही नभ प्रदेश में, पुदगल खंध अनेक, निराबाध निवसे सही, ज्यों अनन्त त्यां एक।